गल्प-संसार-माला

: संपादक :

श्रीपतराय

भाग : ४—तामिल

: लेखक-गण :

चक्रवर्ती राजगोपालाचार्य　　जगन्नाथ अय्यर 'ज्योति'
एस० जी० श्रीनिवासाचार्य　　वृद्धाचलम 'नवललोलुप'
कृष्णमूर्ति 'कल्की'　　चिदम्बर सुब्रह्मण्यन्
स्वर्गीय माधवैय्या　　बी० एस० रामय्या
पिचमूर्ति 'भिक्षु' कुमार स्वामी
कु० प० राजगोपालन्

: इस भाग के संपादक और अनुवादक :

का० श्री० श्रीनिवासाचार्य

बनारस,

सरस्वती प्रेस।

प्रथम संस्करण, १९३८
द्वितीय संस्करण, १९४८
मूल्य दस आने ।

[**परिचय :** भारत में ९ प्रमुख जीवित भाषाएँ हैं जिनका अपना कहानी साहित्य है। इनके अतिरिक्त ४ और जबानें भी हैं—आसामी, उड़िया, सिंधी, गुरुमुखी। हमारी योजना यह है कि पहली ९ भाषाओं मे प्रत्येक से १० या अधिक सर्वश्रेष्ठ आधुनिक कहानियाँ एक-एक पुस्तक में संगृहीत की जायँ और इन संग्रहों की यह माला 'गल्प संसार-माला' के नाम से प्रसिद्ध हो। पहले इन ९ भाषाओं का संग्रह तैयार होगा। १०वें भाग में अन्तिम चार जबानों की मिली हुई कहानियाँ पूरी की जायँगी। आरम्भ में भारत से, इस प्रकार १० भाग हुए। इसके उपरान्त संसार की और भी भाषाओं से कहानियाँ इन पुस्तिकाओं में संगृहीत की जायँगी, जैसे अंग्रेजी, फ्रेंच, रूसी, आदि, और यह माला ३-४ वर्षों में सम्पूर्ण होगी। किन्तु प्रत्येक भाग अपने आप मे पूर्ण होगा और इसलिए यह लम्बी अवधि भयंकर न होनी चाहिये। प्रत्येक भाग में २००-२५० पृष्ठों तक रहेंगे, कागज सुन्दर, सफेद ग्लेज रहेगा, मूल्य बेहद सस्ता, यानी दस आने प्रति भाग और स्थायी ग्राहकों को **आठ आने** में मिलेगा। इस माला की सबसे बड़ी विशेषता इसकी प्रामाणिकता है जिसके लिए प्रकाशकों ने सभी साहित्यकारों तथा संस्थाओं से मदद ली है और पृथक परिश्रम किया है, जिसके लिए प्रकाशकों का नाम ही पर्य्याप्त है। इस माला का स्थायी ग्राहक बनना आपका कर्तव्य होना चाहिये क्योंकि इतनी सुरुचिपूर्ण और प्रामाणिक किताबें इस सस्ते मूल्य हिन्दी में प्राप्य नहीं हैं, तथा इस योजना की सफलता इसी में है कि इसके कम से कम दो हजार स्थायी ग्राहक हमें मिल जायँ।]

मुद्रक :
श्रीपतराय,
सरस्वती-प्रेस,
बनारस।

जिनकी कहानियाँ यहाँ संगृहीत हैं उन्हीं
अमर कथाकारों
को

कृतज्ञता-प्रकाशन

हमें उन सभी लेखकों को, जिनकी कहानियाँ इसमें संगृहीत हैं, और उन सभी प्रकाशकों को, जिन्होंने स्वर्गीय लेखकों की कहानियाँ प्रकाशित करने की कृपापूर्वक अनुमति दी है, अपनी कृतज्ञता प्रकट करते हैं।

— प्रधान संपादक

सूची

कन्या-पितृत्व : स्व० माधवैय्या

[स्वर्गीय श्रीमाधवैय्या का जन्म १८७२ ई० मे हुआ था। आप आधुनिक तमिल-साहित्य के पथ-प्रदर्शकों में से एक थे। अपने समय के आप एक सुदृढ समाज-सुधारक और शिक्षा-विशारद थे। अपने जीवनकाल में स्व० माधवैय्या एक 'पचामृतम्' नाम का पत्र भी चलाते थे। आपने कुछ बहुत सफल उपन्यास भी लिखे हैं, जिनमें 'पद्मावती चरित्रम्' बहुत प्रसिद्ध है। आपने अपनी कहानियाँ 'कुशिक' उपनाम से लिखी हैं। ये ही कहानियाँ तमिल-गल्प-साहित्य की प्रारंभिक कहानियाँ हैं; ये ही सभी कहानियाँ समाज-सुधार की भावना से प्रेरित होकर लिखी गई हैं। यद्यपि आपकी कला में प्रचार वृत्ति अधिक है, पर कला की भी दृष्टि से आपकी कहानियाँ बहुत ऊँची उठती है। तमिलप्रान्त के सामाजिक जीवन का बहुत ही सजीव और सच्चा चित्रण आपकी कहानियों में मिलता है। सन् १९२५ में आपकी मृत्यु से आधुनिक तमिल-साहित्य का एक बहुत बड़ा पोषक उठ गया।

'कन्या-पितृत्व' घटना-क्रम और विषय की दृष्टि से स्व० श्री माधवैय्या की एक विशिष्ट कहानी है। हिंदू-समाज मे कन्या के विवाह को लेकर जो कुरीतियाँ आ बैठी हैं उनका इसमें नग्न-चित्र है। समाज में बेटीवाले को मानो लूटने के लिए ही बेटेवालों का जन्म हुआ। कहानी इस विषय को लेकर बहुत सफलता से चित्रित हुई है। कन्या के पिता की विपत्तियों का इस कहानी मे बहुत ही यथार्थ चित्रण है।

नागनाथय्यर द्वारा कहे गये कहानी में ये शब्द 'जिन्होंने मुझे इस हालत पर पहुँचाया है, वे ही इस पाप के भागी होंगे'—भारत के प्रत्येक ऐसे नवयुवक के, जो विवाह करने जा रहा हो गम्भीर चिन्तन का विषय है।—सं०]

मेडिकल कॉलेज मे चार साल की पढाई खतम होते ही, मैने डाक्टरी पास की और असिस्टेंट सर्जन नियुक्त हुआ। इस गाँव मे प्लेग होते ही मेरी यहाँ तबदीली हो गई।

एक दिन शाम को नागनाथय्यर नाम के एक व्यक्ति अपनी स्त्री और बेटी के साथ 'प्लेग कैंप' मे चले आये। उनकी बेटी रमणी की

उम्र क़रीब बारह साल की थी। गौर वर्ण, कोमल गात और काली लम्बी आँखे—लड़की सुन्दर थी। उन्होंने कहा कि उसी को प्लेग हो गया है और इसी कारण वे कैंप मे आये हैं। लेकिन जाँच करने पर मालूम हुआ कि उसे प्लेग नही हुआ है। मैंने कहा—इसको शीतला की छूत लगी है ; घर लौट जाइये। जब नागनाथय्यर ने मुझसे अनुनय-विनय की कि वे घर जाना नही चाहते और कैंप मे ही दस दिन रहेगे, तब मुझे आश्चर्य हुआ। दरअसल प्लेगवाले भी कैंप मे रहना नही चाहते थे। प्लेग हुए बिना ही ये क्यो यहाँ रहना चाहते हैं, यह जानने की मेरी उत्कण्ठा बढी। मैंने उन्हें एकान्त मे बुलाकर उनका हाल पूछा। उन्होने अपनी राम-कहानी सुनाई—

'मै पुलीस-विभाग मे तीस साल काम कर चुका हूँ। अपने पचपनवे साल मे मासिक ८) पेन्शन के साथ मैंने अवकाश ग्रहण कर लिया। रिटायर होते वक्त अमरावती के किनारे मेरा अपना एक घर था और सेठ के पास छः हज़ार की रकम जमा थी। सभी जायदाद मेरी ही कमाई हुई थी। तीन बार मुझपर रिश्वत लेने का इलज़ाम लगाया गया। उसी मे क़रीब चार हज़ार रुपए फूँक दिये। नही तो मेरे हाथ मे काफी पैसा जुटा रहता। मेरी पहली पत्नी के एक लड़की थी। मेरे रिटायर होते वक्त उसकी अवस्था ग्यारह साल की थी। उसका विवाह करना था। दूसरी पत्नी के भी चार छोटी-छोटी लड़कियाँ थी। बेटा न होने के कारण इस रमणी को ही हम रमण पुकारने लगे और उसे ही अपना पुत्र समझने लगे। पेन्शन पाने के बाद मै अपनी बड़ी बेटी के लिए वर ढूँढने निकला। आठ सौ रुपए वर-शुल्क पर एक मैजिस्ट्रेट के लड़के से शादी तय हुई। उस शादी में कुल अठारह सौ रुपए लग गये, तो भी न तो समधी ही खुश हुए और न जमाई ही। दीपावली आदि के वक्त निमन्त्रण भेजने पर भी दामाद न आये। मेरी भेजी हुई चीज़ों की पहुँच तक उन्होंने नही लिखी। एक बार मै समधी के यहाँ गया था। मुझे वहाँ जो मान-मर्यादाएँ मिलीं, भगवान न करे, वह मेरे सात जनम के बैरी

को भी मिले। लडकी सयानी हुई। पाँच सौ रुपए खर्च कर गौने के लिए इन्तज़ाम किया गया। ऐन मौके पर, जब पुरोहित महाराज गर्भाधान का मन्त्र जप रहे थे, समधिन ने लड़के को उपदेश दिया--उठो बेटा ! छोड़ दो तुम इनको। मै किसी दूसरी लडकी से तुम्हारा ब्याह कराऊँगी। बात यह थी कि मेरे दिये हुए बर्तन भाँड़े आदि से समधिन को सन्तोष न हुआ और उन्होंने मुझे बहुत-कुछ खरी-खोटी सुनाई। लड़का बी० ए० पास था। मैने समझा, बुद्धिमान् होगा, समझाने पर मान जायगा। लेकिन बड़ी देर तक आरज़ू-मिन्नत करने पर भी कुछ फायदा न हुआ। आखिर सेठ के पास से दूने ब्याज पर ५००) का कर्ज़ लिया और तब कही जाकर समधिन का दिल ठडा हुआ। यह तो हुई बड़ी बेटी की बात।

'फिर दूसरी पत्नी की पहली बेटी का विवाह करना था। मेरी बेटियाँ सभी सुन्दर हैं। आप रमणी को ही दृष्टान्त के लिए ले लीजिये। मेरी पेन्शन तो कुटुम्ब के लिए भी काफी नही थी। पर ये सब बाते सुनता कौन है ? ६५०) पर एक लड़के से शादी पक्की हुई। इससे कम दाम के लड़के देवीजी को अच्छे न लगे। आप तो मेरे पुत्र-जैसे हैं। आपसे कहने मे लाज क्या है ? इतने पर भी 'गिलट' के नकली गहने खरीदकर अमीर का स्वाँग बनाना पड़ा। दूसरी छोटी लड़की सातवे वर्ष मे थी। इसलिए यह निश्चय हुआ कि दोनो के ब्याह एक साथ हो जायँ तो खर्च कम होगा। उसके लिए भी वर की खोज हुई। पालघाट मे बारह साल का एक लड़का मिला। ५००) पर बात तय हुई। इन्होंने जो-जो शर्ते बतलाई, सब मैने मान ली। जमाई के लिए कितनी लम्बी-चौडी जरी के किनारवाली धोती खरीदनी चाहिये, बाजा बजानेवाला कितना अनुभवी और होशियार होना चाहिये, कितने वजन के लड्डू बनाने होंगे, कम-से-कम एक दिन के लिए नाच होना कितना आवश्यक है--आदि सब बाते उन्होंने बता दीं। मै मान गया। तिस पर भी जब पालघाटवालो को मालूम हो गया कि पहली बेटी के लिए ६५०) का

वर-शुल्क दिया गया तो उन्होंने मेरी ऐसी बेइज़्ज़ती कराई की कुछ कहिये मत। जनवासा हमारे ठहरने के लिए काफी नही है, हमारे लिए गाड़ी का ठीक बन्दोबस्त नही हुआ, स्टेशन पर हमे कॉफी, टिफिन कुछ भी नही मिला---ऐसी ही हज़ारो शिकायतो की बौछार की गई। अन्त में दो सौ रुपए और न देने पर वे वापस जाने के लिए तैयार हो गये। पाँच सौ तो दिये ही जा चुके थे। अब और कोई उपाय न था। दो-सौ और दिये। किसी तरह शादी हो गई। विवाह के बाद उनके चले जाने पर मैने हिसाब लगाया तो पता लगा कि कुल २५००) शादी मे लग गये।'

मैने पूछा---आपने ऐसे पानी की तरह रुपए क्यो बहा दिये? आपको ग़रीब कुटुम्बो से सम्बन्ध करना था।

नागनाथय्यर ने कहा---

'क्या कहूँ? शायद आप अभी कन्या के पिता नही हुए हैं। 'हम चाहे भले ही दुःख भोगे, लेकिन अपनी बेटी कही सुख से रहे,' यही सोचकर हम उन लोगो से सबन्ध किया करते हैं, जिनके यहाँ कम-से-कम खाने-पीने तक की जायदाद हो। इसी कामना से मैने भी रुपए ख़र्च किये थे। देवीजी ने भी इस कार्य मे मुझे प्रोत्साहित किया। उसके बाद मेरे घर मे दरिद्रता आ बसी। बेटियो का प्रसव, दीपावली, वर-लक्ष्मी-व्रत, कृत्तिकादीप, स्थालीपाक, ऋतुस्नान---ऐसे ही हज़ारो पचड़े थे, जिनके लिए पैसे की अत्यन्त आवश्यकता थी। आप पढे-लिखे हैं। यह तो बताइये कि दुनिया-भर के और किसी भी देश मे बेटीवाले को तबाह करने के लिए इतने मार्ग स्थापित हुए हैं?

'अब मेरे हाथ की पूँजी भी जाती रही। उधार लेने के सिवाय दूसरा रास्ता ही क्या था? कुछ दिन तक प्राइवेट वकालत की। पर बीमारी के कारण काम न कर सका। बाज़ार मे ८००) का क़र्ज हो गया। ३५०) का तो इधर-उधर का क़र्ज़ था। और दो बेटियाँ व्याह के लिए तैयार थी। सोचा, कही भाग जाऊँ। देवीजी ने कहा---एक होटल चलाओ तो किसी तरह जीवन चल जायगा। बेटी तेरह साल की हो गई थी;

इसलिए तुरन्त उसका विवाह करना जरूरी था। पास के गाँव के ही पुरोहित का एक लडका था, जो सब-रजिस्ट्रार के ऑफिस में क्लर्की करता था। मेरी बेटी उसकी द्वितीय भार्या होनेवाली थी। उसने छः सौ रुपया नकद माँगा। मैंने सोचा, किसी भी तरह अपनी बेटी ही तो घर की स्वामिनी बनी रहेगी। इसलिए अपना घर ६००) के बदले लड़के के पिता को दे डाला। सब कर्ज चुकाकर बचे हुए २००) लेकर, गये साल मै यहाँ चला आया। इधर मैंने एक होटल चलाया। उसमें नुकसान ही नुकसान हुआ। जो कुछ था, वह भी चला गया। इतने मे प्लेग का रोग भी यहाँ आ धमका। हमारी उम्र तो अब बीत ही चली है। फिर बेटी की उम्र भी अब बट गई है। उसके विवाह की चिंता रात-दिन हमे पीसे डालती है। न खाना, न कपड़ा। रात मे नींद आये तो कैसे? गनेसजी के मंदिर में एक कोढी बुडवा बैठा है, जिसकी आयु चालीस साल के ऊपर होगी। वह कहता है, तीसरी पत्नी के रूप में मैं रमणी का पाणि-ग्रहण करूँगा। हाय, हाय! उसके हाथ में सौंपने की अपेक्षा, बेटी को किसी अन्धकूप मे गिरा देना बेहतर होगा। कई दिन हुए, हम पति-पत्नी को भर-पेट भोजन भी नहीं मिला। अगर आपकी कृपा होगी तो यहाँ दस दिन तक भर-पेट खाने को मिल जायगा।'

मेरी आँखें डबडबा आई। उनकी पत्नी ने कहा—रेल का किराया अगर मिल जाय तो हम त्रिचिनापल्ली, मदुरा या और कहीं जहाँ प्लेग का उपद्रव न हो, चले जायँगे। मैंने एक दस रुपया का नोट निकालकर उन्हें दिया और कहा—वैसा ही कीजिये। वे चले गये।

दो महीने बीत गये। मैंने समझा, वे इस गाँव को छोड़कर कहीं चले गये होंगे। गये हफ्ते मे अचानक उनकी पत्नी मेरे पास दौडी आई और घबराहट के साथ बोली—डाक्टर साहब, रमणी को सचमुच ही प्लेग हो गया है। जल्दी चले चलिये। उसको बचाने पर आपको बड़ा पुण्य मिलेगा।

मैंने पूछा—अब तक आप लोग यहीं हैं? वे कहाँ हैं?

'हम लोग यहीं पर हैं। वे और कहीं जाना नहीं चाहते। आपने कृपा-पूर्वक जो रुपए दिये थे, वे भी खाने-पीने में लग गये। वे अक्सर कहते रहे—यहीं रहने पर प्लेग आयगा, प्लेग आयगा। परसों सचमुच बेटी को प्लेग लग गया। मैंने उसी दिन आपको बुलाने को कहा। वे ख़ुद तो आपके पास आना नहीं चाहते थे ; मुझे भी आने से रोक दिया। उनसे बिना कहे ही मैं आपके पास आई हूँ। आकर देखिये, मेरी बच्ची को'—यह कहकर वह रो दी।

मैं उनके साथ तुरन्त चल पड़ा।

नागनाथय्यर चबूतरे पर मुँह ढँककर बैठे थे।

'आपको किसने बुलाया ? मेरी बेटी को प्लेग नहीं है।'—वे बोले।

मैंने कहा—मैं अभी देखता हूँ, चलिये।

'नहीं, मैं नहीं आऊँगा। अगर आप चाहते हैं तो जाकर देख लीजिये।'

अन्दर से 'पिताजी, पिताजी' की आवाज आ रही थी। अपने स्थान से वे हिले तक नहीं। मैंने भीतर जाकर देखा। डाक्टर की हैसियत से मैंने कितने ही घोर दृश्य देखे हैं। लेकिन उस दिन उस घर में मैंने जो दृश्य देखा था, वह जन्म भर भूलने का नहीं। वह लड़की चूल्हे के पास ज़मीन पर पड़ी हुई मरण-वेदना से कराह रही थी। उसी के पास दो मरे हुए चूहे पड़े थे, जिनकी बदबू से नाक फटी जाती थी। प्यास बुझाने के लिए उसने जो घड़ा हाथ से खींचा था, वह लुढककर सारा पानी कोठरी भर में फैल गया था। उसी कीचड़ में वह पड़ी थी।

दो-तीन बार मैंने नागनाथय्यर को पुकारा। वे न आये, न जवाब ही दिया। मैंने उसे एक सूखा कपड़ा पहनाकर दूसरी जगह पर लिटाने को कहा। प्लेग कैंप में उसे ले जाने के लिए नागनाथय्यर की अनुमति माँगी। लेकिन उन्होंने कह दिया—नहीं, नहीं, भगवान् जो चाहेगा, वही होगा।

'अरे पापी ! अपनी बेटी की इस तरह हत्या क्यों कर रहे हो ? परसों जो प्लेग लगा था, उसकी सूचना अब तक आपने मुझे नहीं दी ? अब

तो बचने की आशा नही है। फिर भी वहाँ ले जाकर बचाने की भरसक कोशिश करूँगा। आप और देवीजी, दोनो चलें। आप दोनो के लिए अच्छे भोजन की व्यवस्था करूँगा। आपकी बीमारी के लिए भी दवा दूँगा।'

'वहाँ जाने पर रमणा शायद बच जायगी ?'

'बच जायगी , जहाँ तक मुझसे बनेगा, मै प्रयत्न करूँगा।'

'नही, नहीं। यहाँ से मै उसे ले जाने नही दूँगा।'

'ऐसा क्यो कहते हैं ? आप चाहते हैं कि वह न बचे ?'

'ये सब बाते आप क्यो पूछ रहे हैं ? भगवान् की जो मर्जी होगी, वही होगा।'

इतने मे उनकी पत्नी भीतर शोर मचाकर रोने लगी। मैंने जाकर देखा। रमणी अपनी मा की गोद मे मरी पड़ी थी।

मै बाहर चला आया और मन की कटुता व्यक्त करते हुए कहा— आपकी इच्छा पूरी हुई। रमणी मर गई। लेकिन उसकी हत्या आपके ही सिर पड़ेगी।

'सब भगवान् की इच्छा है। भगवान् अनाथ पर कृपा करेंगे। मै हत्यारा नही हूँ। जिन्होने मुझे इस हालत पर पहुँचाया है, वे ही इस पाप के भागी होंगे। ईश्वर अन्धा नही है , उसकी भी आँखे होती हैं।' —नागनाथय्यर ने कहा।
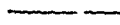
देवसेना : : चक्रवर्ती राजगोपालाचार्य

[श्री चक्रवर्ती राजगोपालाचार्य का जन्म १८७८ ई० मे हुआ था। श्री राजगोपालाचार्य को जो सफलता राजनैतिक क्षेत्र मे मिली है, वह उनकी साहित्यक प्रसिद्धि को काफी हद तक अँधेरे मे रखती है। आज बहुत कम लोग जानते हैं कि मद्रास की काग्रेस-सरकार के भूतपूर्व प्रधान मन्त्री राजाजी तमिल-भाषा के श्रेष्ठ निबन्धकार, कहानी-लेखक एवं शब्द-संग्रहकर्ता है। सामाजिक क्षेत्र में भी उन्हे कम प्रसिद्धि नहीं मिली है। ऐसा प्रतीत होता है कि आपका जन्म ही सद्भावों के प्रचार के लिए हुआ है।

श्री राजगोपालाचार्य ने कहानियाँ प्रचारात्मक दृष्टि से लिखी हे। पर उस दृष्टिकोण को लक्ष्य मे रखकर भी उन्होंने कला को अपनी दृष्टि से ओझल होने नही दिया है। आपकी कहानियों की सरलता और मार्मिकता जितना प्रिय वस्तु गॉव के रहनेवाले गँवारों के लिए है, उतनी ही अध्ययन-योग्य शिक्षित एवं सुसंस्कृत सहृदयों के लिए भी है। आपकी भाषा सरल, साफ-सुथरी, अलकृत एव मधुर होती है। आपकी भाषा विदेशीय प्रभाव से मुक्त है। आपकी श्रेष्ठ कहानियों का एक संग्रह 'राजाजी की कहानियाँ' नाम से गतवर्ष प्रकाशित हुआ था। आपने 'कृष्ण का मार्ग', 'उपनिषदों की सीढियाँ' नामक आध्यात्मिक ग्रन्थ भी लिखे हैं जिनसे आपके गम्भीर अध्ययन और क्रियात्मक चिन्तन का परिचय हमें मिलता है। तमिल के पारिभाषिक शब्दों को एकत्रित करने में भी आपने बडी सहायता की है।

'देवसेना' आपकी कहानियों मे एक विशिष्ट स्थान रखती है। यद्यपि 'देवसेना' मे किसी विषय-विशेष का प्रचार नहीं किया गया है, पर आज की हमारी सामाजिक दशा का यह एक बहुत ही सफल, सजीव, एवं यथार्थ चित्रण है—व्यवसाय की मंदी, बेकारी, मिल-हडताल, व्यभिचार और भिखारियों की समस्या आज की जलती हुई समस्याएँ हैं। 'देवसेना' कहानी मे एक बहुत बडी आघातकारिणी शक्ति है जो हमें विचार करने पर विवश करती है। यहीं पर 'देवसेना' की सफलता का रहस्य है। यहीं पर राजाजी की पैनी दृष्टि का हमें परिचय मिलता है।—सं०]

(१)

रामनाथय्यर और उनकी पत्नी सीतालक्ष्मी चाइना बाजार गये और कुछ चीज़े खरीदने के बाद, पास के होटल मे जल-पान कर, अपनी मोटर मे आ बैठे ।

'समुद्र के किनारे चले ?'—रामनाथय्यर ने पूछा ।

'बीच' (Beach) पर ? किसी ऐसी जगह मे गाड़ी रोकने को कहिये, जहाँ लोगो की भीड़ न हो । भीड़-भडक्के मे जाना मुझे पसन्द नही । वहाँ देखिये, खिलौने बिक रहे हैं । दो-चार खरीद लीजिये, बच्चो के लिए ले जायँगे ।'

सीतालक्ष्मी का इतना कहना था कि खिलौनेवाला गाड़ी के पास आ गया । वह किसी तरह सीतालक्ष्मी के मन की बात ताड़ गया । पति-पत्नी गाड़ी मे बैठे-बैठे खिलौने चुन रहे थे और भाव पटा रहे थे । गाड़ी के दूसरे दरवाजे के पास एक युवती भिखारिन एक नन्हे बच्चे को गोद मे ले सबको दिखाकर कह रही थी—महाराज, धरम कीजिये । नन्हा बालक है, मा !

रामनाथय्यर ने पूछा—सभी जापानी खिलौने हैं न ?

व्यापारी ने कहा—जापानी ही हैं, और क्या ? हमारे यहाँ ऐसे खिलौने बनते कहाँ हैं ?

भिखारिन ने फिर गिड़गिडाकर प्रार्थना की ।

सीतालक्ष्मी ने कहा—सौदा करते वक्त यह क्या बला है ? इस शहर मे भिखारियों का उपद्रव बहुत ज़्यादा हो गया है ।

'भूख लगती है, भाई , आँख उठाकर देखो, मा ! भगवान् तुम्हारा भला करे !'—भिखारिन ने कहा ।

सीतालक्ष्मी ने डाँटा—जाओगी कि पुलिस को पुकारूँ ?

'दूध के बिना बच्चा तड़प रहा है, मा ! एक आना भीख दो, भाई ! कितने ही तो ख़र्च हो रहे हैं, महारानी !'

रामनाथय्यर भाव ठहराकर मोल ली हुई चीज़ो को मोटर मे रखते हुए बोले—चलो, बीच चले ।

ड्राइवर ने भिखारिन को हट जाने का सकेत किया और गाड़ी चली।

'महाराज, महाराज' कहती हुई भिखारिन कुछ दूर तक गाड़ी को पकड़े हुए दौड़ी आ रही थी ।

'दौड़ो मत—मर जाओगी !'– रामनाथय्यर ने कहा। भिखारिन का मुँह उनको कही देखा हुआ-सा जान पड़ा। गाड़ी तेजी से चलने लगी, तो उन्होंने कहा—लड़की बेचारी छोटी है। शक्ल देखने से तो अपने गाँव की मालूम होती है ।

'कोई भी गाँव की हो, होगी कोई चुड़ैल ! उससे हमे क्या करना है ? दीजिये, देखूँ तो वह नया खिलौना क्या है, ऐरोप्लेन ? चाभी देने का है या मामूली खिलौना है ?'

खिलौनो को एक-एक करके देखते हुए वे समुद्र-तीर पहुँचे ।

(२)

सेलम मे पेरियण्णमुदलि गली मे ग़रीब जुलाहो का एक कुटुम्ब था । वैयापुरि की उम्र तीस थी। उसकी बहन देवसेना बीस की थी, उसका ब्याह नही हुआ था । उनकी मा का नाम था पलनियम्माल । तीनो अपने पुराने परम्परागत जुलाहे के धन्धे से कष्टमय जीवन व्यतीत करते थे। दिन-भर की मेहनत करके तीनो मिलकर एक हफ्ते मे चार रुपए कमाते थे ।

कई साल से करघे का व्यवसाय ठडा होता गया। मजदूरी घटने लगी । बाद मे कम मज़दूरी के भी न मिलने से लोगो की हालत ख़राब थी । सेलम मे कई मेख़ों के साथ वैयापुरि की मेख़ भी बेकार पड़ी थी । देवसेना दो ब्राह्मण अफ़सरों के यहाँ घर की सफाई और काम-काज कर देती थी, जिससे उसको मासिक तीन रुपए मिल जाते थे। पलनियम्माल भी एक घर मे लीप-पोतकर एक रुपया कमा लेती थी। वैयापुरि करघा

के मालिकों के पास नौकरी के लिए भटकता फिरा। जब कही नौकरी नही मिली, तो वह अपनी मा से विदाई लेकर बगलोर चला गया। किसी मिल मे नौकरी पाने की उम्मीद से कई मुदलि लोग भी उसके साथ हो लिये।

वैयापुरि का पत्र आया कि कई दिन की कोशिश से मिल मे नौकरी लग गई है। वैयापुरि कुछ लिखना-पढना जानता था। बचपन मे उसके पिता ने उसे मुहल्ले के म्यूनिसिपल स्कूल मे शामिल कराया था। उन दिनो जुलाहो का जीवन इतना कष्टमय नही था।

पड़ोसी मारियप्पा मुदलि के लड़के ने वैयापुरि के पत्र को पढ सुनाया—गली-गली छानने पर, कितनो की मुट्ठी गरम कर, एक मिल मे नौकरी मिली है। रोज आठ आने मजदूरी मिलती है। महीने मे छब्बीस दिन काम करने पड़ते हैं, इसलिए तेरह रुपए मिलेगे। इस महीने की तनख्वाह खाने-पीने मे और कर्ज चुकाने मे लग जायगी। अगले महीने से तुम लोगो को महीने दो रुपए भेज सकूँगा। आगे ईश्वर है।'

बुढिया और देवसेना के आनन्द की सीमा न रही।

× × ×

दस दिन बाद, एक और खत मिला—माता को साष्टाग नमस्कार। यहाँ ईश्वर की कृपा से सब कुशल है। आशा है, देवसेना और तुम कुशल-पूर्वक होगी। यहाँ मिल का काम मुझे अच्छा नही लगता। उन दिनों की याद करके, जब मै अपने करघे पर बैठा काम कर रहा था, मै आँसू पीकर रह जाता हूँ। यहाँ मैं पागल-सा हो रहा हूँ। सिर मे चक्कर आता है। मैं अपने दुःखों और झंझटों का वर्णन नही कर सकता। न-जाने क्यों मै गॉव छोड़कर इधर चला आया। पडोस के घरवाले लड़के के द्वारा, अगर हो सके तो, चिट्ठी लिखना। मेरा पता है—सेलम वैयापुरि मुदलि, मल्लेश्वरम् कुली लाइन।'

(३)

देवसेना जिन दो घरों मे काम-काज करती थी, उनमें से एक, एक

पेन्शनर का घर था। उनकी स्त्री अच्छे स्वभाव की थी। वह काम लेने मे सख्त थी, पर अन्य बातों मे प्रेम का बर्ताव रखती थी। उसने देवसेना को अपनी एक पुरानी साड़ी दी। रसोई में बची हुई चीज़ें भी—भात और कढी, पापड़ और खीर—उसे ही मिलती। इस तरह कितने ही दिन बीत गये।

शायद भगवान को देवसेना का शान्तिमय जीवन मजूर न था। उस घर का रसोइया—देवसेना को बचे हुए भोजनादि देनेवाला—उसके साथ रसीली बाते करता। एक दिन उसने उसकी इच्छा के विरुद्ध उसके साथ छेड़छाड़ की।

देवसेना की आँखों मे खून उतर आया; लेकिन मारे लज्जा के उसने यह बात किसी से नही कही। उस धूर्त ने लालच दिया था—किसी से कहना मत; तुझे मासिक दो रुपए दूँगा।

देवसेना आँसू पीकर रह गई। उसने घर जाकर अपनी मा से कहा—मै उस नीम के पेड़वाले घर मे काम नही करूँगी, मा!

जब मा ने उसका कारण पूछा, तब देवसेना ने बड़े दुःख के साथ सारी हकीक़त कह सुनाई। बुढिया ने कहा—मैं सारी बाते घर की मालकिन से कहूँगी।

देवसेना बोली—नही मा, उनसे कहने से फायदा ही क्या है? मै फिर वहाँ काम पर नही जाऊँगी।

और जगह नौकरी की तलाश की गई, पर हरएक घर मे कोई न कोई नौकरानी काम पर थी ही। दो महीने इधर-उधर भटकने पर एक घर मे नौकरी मिल गई।

× × ×

छः महीने गुज़र गये। बङ्गलोर मे उस मिल मे जहाँ वैयापुरि काम करता था, हड़ताल मनाई गई। साहब ने किसी मिस्त्री पर हाथ चला दिया था। उसके बाद वह मिस्त्री और कुछ कुली काम से निकाले गये। इस कारण मज़दूर-यूनियन की बैठक हुई, जिसमें यह प्रस्ताव पास हो

गया कि उस महीने के वेतन के मिलते ही हड़ताल शुरू की जाय। वैयापुरि को भी इसमे शामिल होना पड़ा।

एक महीने तक हड़ताल चालू रही। मजदूरों की सभाएँ हुई और बड़ी हलचल मची। आरम्भ मे उद्वेग कुछ अधिक था, पर ज्यों-ज्यों पैसे की कमी होती गई, त्यों-त्यो उनका जोश भी ठडा पड़ता गया। चन्द सरकारी अफसरो ने अन्त मे सुलह कराई। सब लोग फिर मिल मे काम करने लगे। एक हफ्ते के बाद 'गेट' पर नोटिस लगाया गया कि—'पच्चीस कामगार काम से हटा दिये गये हैं, और वे मिल मे प्रवेश न करें।' वैयापुरि भी उन पच्चीसो मे से एक था।

वैयापुरि ने अपने मिस्त्री से कहा—अरे, मैंने क्या पाप किया था? मैं तो नया आया था और किसी मे शामिल भी नहीं हुआ।

मिस्त्री ने जवाब दिया—बडे साहब का हुक्म है। यह सब उस हत्यारे 'टाइम-कीपर' रंगस्वामी नायकन की करतूत है। और नामों के साथ तुम्हारे नाम को भी सूची मे मिलाकर उसने साहब के पास दे दिया है। इसमे मैं कुछ नही कर सकता।

रगस्वामी नायकन के पास बडी नम्रता के साथ अपील की गई। उसने कहा—मै कुछ नही जानता। यह सब वेतन-बँटवारा करनेवाले गुमाश्ता अय्यर का काम है।

हर किसी के पास बार-बार जाकर अनुनय-विनय करने पर भी कुछ नही हुआ। मैनेजर ने कहा—तुम लिखना-पढना जानते हो, और लोगों को तुमने भडकाया है, इसलिए हम तुमको काम पर नहीं ले सकते।

× × ×

कई दिन घूम-घामकर, हाथ के सब पैसे खतमकर, बहुत तकलीफ के साथ वैयापुरि मदरास आ पहुँचा। उसके साथ ही और दस कामगार, जो उस मिल से निकाले गये थे, नौकरी की खोज मे मदरास आये। उन्होंने अपने सब पैसों को आपस मे बाँटकर भोजन का खर्च निकाला, और आठ दिन तक इधर-उधर भटकते फिरे।

वैयापुरि को एक मिल में नौकरी मिली। 'गेटकीपर' और छोटे-मोटे अफसरो को चाँदी के जूते मारने मे पाँच रुपए लग गये। वैयापुरि ने अपने सोने के कुण्डल बन्धक रखकर थोड़े रुपए कर्ज़ लिये और उसीसे भोजन-ख़र्च, मित्रो का क़र्ज वग़ैरह चुका दिये। कुछ दिनो के बाद वैयापुरि अपना कष्ट भूलने के लिए शराब पीने लगा। सेलम मे उसकी यह आदत नहीं थी। फिर कुछ यारों ने उसे जुए का भी रास्ता दिखा दिया और उसे मालामाल हो जाने की तरकीब बताई। उसकी मज़दूरी मे से भोजन-व्यय, झोपडी का किराया आदि ज़रूरी ख़र्च के बाद जो रकम बचती, वह गाँव को भेजे जाने के बदले इन्ही मदो मे ख़र्च की जाती। पठान का ऋण भी बढता ही गया। इन तकलीफ़ों से तग आकर वह और भी ज्यादा पीने लगा।

पहले तो वह इधर-उधर की बातें करके अपने कुटुम्बियो को टाल देता था। अब उसने लिखा—खर्च के लिए मै कुछ नहीं भेज सकता। अगर चाहे तो देवसेना यहाँ आकर किसी मिल मे काम कर सकती है।

यह पत्र पढकर देवसेना और पलनियम्माल का जी धक-से हो गया। कुछ रोज सब्र करने पर एक दिन देवसेना ने कहा—क्यो मा, मै मदरास ही क्यो न चली जाऊँ? वैयापुरि के साथ काम करके मै भी दो-चार पैसे कमा लूँगी और तुमको भेजा करूँगी। सुना है, मदरास मे मुझ-जैसी कितनी ही लड़कियाँ मिल मे काम करती हैं।

पहले तो माता ने बड़ी आना-कानी की और कहा—यह भी कही हो सकता है? तुझ-जैसी अनजान लड़कियाँ उतनी दूर कैसे जायँ? कुछ दिन वादविवाद करने के बाद वृद्धा भी सहमत हुई। देवसेना ने अपने करनफूल गिरो रखकर पड़ोसी मारप्पन के पास से बाहर रुपए कर्ज़ लिये, और मदरास के लिए रवाना हुई।

(४)

मदरास मे वैयापुरि ने देवसेना को एक मिल मे सूत कातने के विभाग मे लगा दिया। वैयापुरि का मिल अलग था और यह अलग। उस मिल

मे देवसेना-जैसी करीब डेढ सौ लड़कियाँ, छोटी और बड़ी काम करती थी। देवसेना और उसके साथ की दस लड़कियों का सचालन करनेवाला एक मेट था। यह पहले तो देवसेना से बहुत प्यार के साथ पेश आता था। फिर काम करते वक्त डाँट-डपट करने लगा। जब कभी एकान्त मे मिलता, तो बिना कारण ही उसके साथ बडी रसीली बातें करता।

देवसेना ने अपनी एक साथिन से प्रश्न किया—यह क्या बात है ? ये क्यो इस तरह का बर्ताव करते हैं ?

साथिन ने मुस्कराते हुए कहा—तुम तो जैसे कुछ जानती ही नहीं ! बेचारी, गँवार हो ! अगर उनके कहे मुताबिक न चलो, तो वे तुम पर मजदूरी की आधी से भी ज्यादा रकम का जुरमाना लगा दे। अगर वे खुश हो जायँ, तो जो भी सुभीता तुम चाहो, कर दे।

गरीबो की तकलीफ़ को पूछता कौन है ? तिस पर ग़रीब लड़कियों का जन्म लेकर जो मिलो में काम करती हैं, उन्हें तो पूर्व-जन्म की पापिन ही कहना चाहिये।

देवसेना ने कुछ दिनो तक सब बातो को सहन किया। फिर अपने आपको अक्षम समझकर उसने मिस्त्री के व्यवहार का प्रतिवाद करना छोड दिया। दिल थामकर वह उसके साथ हँसी-खुशी से बोलने-चालने लगी। दिन पर दिन उसमे वह आनन्द का अनुभव करने लगी। उसकी मज़दूरी भी वढ गई।

कई महीने बीत गये। देवसेना को शरीर में बाधाएँ दिखाई दी। उसे मालूम हुआ कि उसके पाँव भारी हो गये हैं। सारे देवताओ की उसने मनौतियाँ मान ली। जगल मे शिकारी से बचने के लिए भागने-वाली हिरनी की भाँति वह चकित और किंकर्त्तव्यविमूढ हो गई। भाई वैयापुरि से अपनी बात कहने मे उसे डर लगा। उसकी हालत को देख कुछ साथिने उसकी हँसी-दिल्लगी करने लगी। उसने गाँव जाने का विचार किया ; लेकिन उसे यह भय हुआ कि गाँववाले उसे बिरादरी से निकाल देगे। उसकी मा इस बात को कैसे सहन करेगी, यह सोचते

ही उसने गाँव जाने का इरादा छोड़ दिया। भगवान पर भरोसा रखकर उसी हालत में वह चुपचाप मिल में काम करती जाती थी।

एक दिन अचानक उसका मन सिहर उठा। वह खूब रोई—हाय मैं क्या करूँ? मैंने अपने कुल को कलंक का टीका लगाया है!

उसकी साथिन बोली—घबराओ मत देवसेना, यह तो एक ऐसी घटना है, जो सब पर बीतती है। इसके लिए दवा है तुरन्त आराम हो जायगा।

'हाँ, मैंने भी सुना है, पर मुझे डर लग रहा है। कहीं मर तो न जाऊँगी? हाय रे भगवन्! मुझे छिपने के लिए कहीं ठौर बताओ।

'दो रुपए दो तो मुत्तुस्वामी आचारी गली में एक बाई रहती है। वह सब कुछ कर देगी।'

'अगर पुलिस को खबर मिल गई, तो वे पकड़ न लेंगे?'—देवसेना से पूछा।

'अरी, उसके लिए डरो मत। उस बाई का पुलिसवालों के साथ मेल-जोल है। तुम तो जानती हो, रुपयों से कोई भी काम बन सकता है।'

'हाय! मैं रुपए के लिए कहाँ जाऊँ? हा भगवन्! तुम तो मालूम पड़ता है, मुझे भूल गये हो! मैं इस गन्दी जगह में आई क्यों? अच्छा होता, मैं सेलम में ही भूख-प्यास से तड़प-तड़पकर मर जाती!'

× × ×

कुछ दिनों के बाद किसी दूसरी साथिन ने एक उपाय बता दिया—शिशु की हत्या नहीं करनी चाहिये, दैया! कहते हैं, वह तीन जन्म तक न मिटनेवाला पाप है। गणेश-मन्दिर की गली में एक बुढ़िया रहती है, अच्छे स्वभाव की है। उसके पास चली जाओ, तो सब काम वह कर लेगी। तुम्हारे-जैसी कितनी ही स्त्रियाँ उसके घर में जच्चा हुई हैं। तुम मत घबराओ।

देवसेना ने दुआ माँगी—भगवान तुम्हारा भला करे, बहन!

अनन्तर देवसेना गणेश-मन्दिर की गली में रहनेवाली परोपकारिणी

बाई के पास गई। यथासमय प्रसव हुआ। बच्चे को छूते ही देवसेना की दुनिया कुछ निराली ही हो गई। वह सब कष्टों को भूल गई। बच्चा ही अब उसका सारा ससार था।

वह बच्चे को दूध पिलाती हुई कहती--यह ईश्वर की देन है। इस बेचारे ने क्या किया है? मै ही कुल-कलकिनी हूँ। इस तरह कुछ दिनो तक वह अपनी चिन्ताओं को भूल सी गई।

गणेश मन्दिर की गलीवाली परोपकारिणी बाई बड़े रहम के साथ कहती—देवसेना, तुम अब काम पर नही जा सकती हो। और कुछ दिन यहाँ ठहर जाओ।

'दुनिया मे ऐसे अच्छे लोगो के रहते मैने भगवान की निन्दा की।' —यह सोचकर देवसेना ने परमेश्वर की वन्दना की।

एक महीने-बाद भेद खुला। वह बुढिया मानव-वञ्चित ललनाओं को अपने पास रखकर उनसे जीविका चलानेवाली थी। देवसेना उसके जाल मे फँस गई। वह फिर कभी मिल मे काम करने नही गई।

(५)

'सेलम मे अपने घर मे काम करनेवाली देवसेना को तुम नही जानती हो? बस, उसीके जैसी थी वह भिखारिन।'—रामनाथय्यर ने कहा।

रामनाथय्यर उन्ही पेन्शनर के ज्येष्ठ पुत्र थे, जिनके घर मे देवसेना पहले-पहल काम मे लगी थी। वे मदरास मे बड़े बैंक के खज़ाची थे।

सीतालक्ष्मी बोली—सेलमवाली लड़की यहाँ क्यो आने लगी? यह आपका भ्रम है।

'न-जाने वह कौन है। कोई भी हो, बच्चे को गोद मे लिये इस तरह स्त्रियाँ भीख माँगने लगी हैं, देश की कैसी दुर्दशा हो रही है!'

'बस, आपको तो हमेशा देश का ही ध्यान लगा हुआ है। पहले अपने कुटुम्ब को तो सँभालिये।'—उनकी स्त्री ने कहा।

दूसरे दिन शाम को भी रामनाथय्यर के स्मृतिपट से उस भिखारिन का रूप दूर नही हुआ। वे दफ़्तर से सीधे चाइना बाज़ार गये। फिर एक

बार उससे मिलकर दो-दो बातें कर लेने की उनकी इच्छा थी, इसलिए वे होटल के पास ही गाड़ी रोककर कुछ देर तक उसकी प्रतीक्षा करते रहे। कई भिखारियों ने 'महाराज, महाराज' कहकर उन्हें घेर लिया ; पर वह वहाँ नहीं थी।

दूसरे शनिवार की शाम को रामनाथय्यर और उनकी पत्नी दोनों फिर चाइना बाज़ार की तरफ चले।

'वह देखिये, आपकी भिखारिन !'—सीतालक्ष्मी ने कहा।

बच्चे को गोद में लिये और 'मा, एक आना दो। इस बच्चे की ओर आँख उठाओ, मैया !' कहती हुई वह भिखारिन, कुछ दूर पर खड़ी दूसरी मोटर की ओर जल्दी से दौड़ी।

रामनाथय्यर की गाड़ी को देखते ही भिखारिन जान गई कि उस गाड़ी में बैठे हुए लोग कुछ न देंगे, और इसीलिए वह दूसरी गाड़ी के पास चली गई। भिखारियों को यह ज्ञान अनुभव से होता है। हरएक बात में अक्लमन्दी और चतुराई होती है न ? दूर पर खड़ी हुई भिखारिन को पास बुलाने में रामनाथय्यर को शरम लगी। वे कुछ देर तक चुपचाप खड़े रहे। उन्होंने सोचा कि वहाँ का काम पूरा हो जाने पर वह उनके पास आयगी, लेकिन वह भीड़ में ग़ायब हो गई और फिर कभी नहीं दीख पड़ी।

'अच्छा, चलिये अब घर !'—सीतालक्ष्मी ने कहा।

आठ दिन के उपरान्त रामनाथय्यर और सीतालक्ष्मी सिनेमा देखने चले। खेल था 'नलोपाख्यान'। 'गेट' पर बड़ी भीड़ थी। नई स्टार टी० के० धनभाग्यम् दमयन्ती का पार्ट अदा करनेवाली थी।

लोगों ने कहा—दूसरे 'शो' में ही जा सकते हैं। इस 'शो' के लिए टिकट बिक चुके हैं।

रामनाथय्यर ने पूछा—फिर घर जाकर लौटें तो ?

सीतालक्ष्मी के जवाब देने के पहले ही एक भिखारिन मोटर के दरवाज़े के पास आकर बोली—मैया, भीख दो।

रामनाथय्यर ने मुड़कर देखा कि वह सेलमवाली तो नहीं है। वे उसी के ध्यान में लीन थे। यह वह नहीं, दूसरी थी।

'यहाँ गाड़ी को रोकने से भिखमगों का उपद्रव है। जल्दी घर चलो, रामन नायर !'—सीतालक्ष्मी ने ड्राइवर को आज्ञा दी।

उसी समय एक पुलिस के सिपाही ने उस भिखारिन को मार भगाया।

× × ×

उसी रात को रामनाथय्यर ने स्वप्न में उस भिखारिन को देखा। उन्होंने जिज्ञासा प्रगट की—तुम देवसेना तो नहीं हो ? तुम्हारा गाँव कौन-सा है ?

आनन्द से प्रफुल्लित आँखवाली भिखारिन बोली—मालिक, ओ मालिक, आप सेलम के रहनेवाले हैं न ? नीमवाले घर के ही हैं न ?

उन्होंने ड्राइवर से कहा—नायर, इसको गाड़ी में चढ़ा लो।

घर जाते ही उनकी पत्नी ने पूछा—यह कौन है ? इस चुड़ैल को क्यों घर लाये ?

'इसको अपने घर में खिलाकर क्यों नहीं रख सकते ? भोजन देकर चार रुपए का वेतन भी लगा देंगे।'

'अच्छा विचार किया आपने ! दुनिया भर के निकम्मों को अपने घर में आश्रय देंगे ! वाह ! कैसा बुद्धिमानी का काम किया है। चलो, हटो बाहर !'

भिखारिन ने कहा—मा, मैं चोरी नहीं करूँगी। तुम जो काम करने को कहो, सो करूँगी।

सीतालक्ष्मी ने कह दिया—कुछ नहीं हो सकता। चलो, बाहर।

भिखारिनी को एक रुपया देने के लिए रामनाथय्यर जेब को टटोलने लगे, पर थैली जेब में नहीं थी। इधर-उधर खोजते-खोजते थक गये। भिखारिन का बच्चा ज़ोर से रोने लगा—वे जाग उठे—स्वप्न था ! उनकी बच्ची राधा बिस्तर पर बैठी रो रही थी।

'ख़ैर, सीतालक्ष्मी इतनी निष्ठुर नहीं हो सकती; स्वप्न ही तो है!'—यह सोचकर रामनाथय्यर प्रसन्न हुए।

× × ×

उसके बाद कई दिनों तक रामनाथय्यर ने बाज़ार-हाट, स्टेशन-सिनेमा—सब जगहों में उसकी खोज की; पर वह भिखारिन उनको मिली ही नहीं। कौन जाने, वह क्या हुई?

कमिश्नर की कसक : : एस० जी० श्रीनिवासाचार्य

[श्री एस० जी० श्रीनिवासाचार्य का जन्म १८८१ ईस्वी में हुआ था। तमिल-भाषा मे शिष्ट और ऊँचे दर्जे के साहित्य के प्रवर्तक रूप मे आप काफी ख्यातनामा हैं। आपकी कहानियाँ विनोद, हास्य और एक मीठी चुटकी से ओत-प्रोत रहती हैं। आप कला के अनन्य उपासक और गम्भीर विचारक भी हैं। आपका अध्ययन बहुत विस्तृत और गहरा है।

आप पहले डिस्ट्रिक्ट-जज थे और आजकल अवसर-प्राप्त हैं। उक्त पद पर रहते समय मानव-जीवन के विविध पहलुओं का जो अध्ययन आपने किया, उसकी स्पष्ट झलक आपकी कहानियों मे पाई जाती है।

'कमिश्नर की कसक' आपकी शैली का एक सुन्दर नमूना है। साधारण से साधारण विषयों में भी हास्य और विनोद की सृष्टि कैसे की जाय, प्रस्तुत रचना उसका एक उत्कृष्ट उदाहरण है। दुनिया भर के अपराधियों को पकड़कर सजा दिलानेवाले कमिश्नर अपने ही रसोई घर के चोर को नहीं पकड़ पाये और इसका उन्हें जीवन भर पश्चात्ताप बना रहा। कमिश्नर के घर का वातावरण इस तरह के अधिकारियों के गृह-जीवन पर एक मार्मिक व्यंग है। कमिश्नर का चरित्र चित्रण तो अनोखा है ही, साथ ही उनका बंगला हुक्म नम्बर भी कहानी के विनोद में एक नवीन हास्य-धारा बहाता है—स०]

आज के अखबार मे, दीवान बहादुर जी० हसराज अय्यगार सी० आई० ई०, पेन्शनर असिस्टेंट कमिश्नर आफ़ पुलिस, की मृत्युवार्ता पढकर मुझे बड़ा दुःख हुआ। कुछ ही दिन पूर्व उनकी सुशीला पत्नी का देहान्त हो गया था। अय्यगार, सरकार और जनता द्वारा आदर की दृष्टि से देखे जाते थे। उनकी इकलौती बेटी चन्द्रमती का विवाह मेरे मित्र बलराम के साथ हुआ था, और दोनो पति-पत्नी मज़े से रहते हैं। उन्हे किसी बात की कमी नही है। लेकिन अय्यगार के मन मे एक कसक रह-रहकर उठा करती थी। बात बिल्कुल साधारण थी। लेकिन अय्यगार उसे अपना एक 'कलक' मानते थे, और लोगो से उसका ज़िक्र

करते थे। कहा करते—मैने तो दुनिया भर के अपराधियो को पकड़वाकर उन्हे सज़ा दिला दी है; लेकिन यह कैसी बात है कि मेरे ही घर मे एक मामूली-सी चोरी हुई और मै उसका पता न लगा सका। उन्हे इसी बात की चिन्ता थी। उस चोरी की हक़ीक़त मुझे मालूम होने पर भी अब तक मैने उसको छिपा रखी थी। अब उसे प्रकट कर रहा हूँ। मेरा यह व्यवहार उचित है या नहीं, इसका निर्णय पाठक ही करे।

× × ×

एक दिन की बात है। बलराम मेरे पास आया और बोला—आज मेरी चन्द्रमती के बँगले मे हम सबका प्रीति-भोज होगा।

'चन्द्रमती कौन है?'—मैंने पूछा।

'अरे! तुमसे तो दस दिन से कहता आ रहा हूँ। चित्रकला की प्रदर्शिनी मे उस दिन उससे और उसकी माता से मेरी भेंट हुई तभी से...'

'ओ हो! वही! तुमने तो संक्षेप मे इतना ही कहा कि—एक लड़की है; उसे देखते ही रंभा और मेनका मारे लज्जा के मर जायँगी। यह तो तुमने मुझसे कभी कहा ही नहीं कि उसका नाम चन्द्रमती है या तुम्हारा नाम हरिश्चन्द्र है...'

'उन दोनो ने अपनी सम्मिति दे दी है।'

'किस लिए?'

'मुझसे ब्याह करने के लिए।'

'दोनो ने? यह तो कभी हो नहीं सकता। मै इस पर यकीन नहीं...'

'बको मत। चन्द्रमती मुझसे विवाह करेगी। उसकी माता ने भी यह बात मान ली है। लेकिन उसके पिता ही...' बलराम कुछ रुका।

'अरे, पिता की क्या परवाह है? ये सब बाते तो माता के तय करने की होती हैं।'

'उनके बारे मे ऐसा न कहो, यार। जानते हो, वे कौन हैं? हंसराज अय्यंगार, असिस्टेंट कमिश्नर ऑफ पुलीस।'

'रहने भी दो। कमिश्नर होने से क्या हुआ ? घर मे तो उनकी दाल न गलती होगी, बिल्ली की नाई कही कोने मे पड़े रहते होगे।'

'उनकी बाते तुम क्या जानो ? उनकी बोलचाल ही मेघ-गर्जन सी होती है। उनके ऑफ़िस मे यह अफ़वाह है कि उनके ड्राइवर ने कॉर के भोपू को अनावश्यक समझकर उसे अलग निकाल रखा है। सड़क पर जाते वक्त उनकी बातचीत की ध्वनि से ही लोग रास्ते से हट जाते हैं।'

'तुम भी उन्ही की तरह गरजा करो तो बात बन जायगी ?'

'जानते हो, उनको दीवान बहादुर की उपाधि कैसे मिली ? एक दिन बन्दूक का लाइसेस लेने के लिए कोई शख्स उनके पास आया और दस रुपए का नोट आगे बढाया। तब उनके गर्जन को सुनकर वह शख्स घबड़ा गया और यह बताने के अलावा कि वह नोट जाली था, उन्हे अपने साथ ले गया और वह जगह दिखा दी, जहाँ वैसे ही दस लाख के नकली नोट रखे थे।'

'वाह, वाह ! तुम्हारे पास तो जाली नोट नही है ? क्योंकि तुम तो उनके बॅगले पर जा रहे हो न ?'

'वे अपने आफिस और घर मे कोई फर्क नहीं रखते। सुना है, घर मे भी वे चार-चार घंटो मे एक बार, सरकारी 'जी० ओ०' की तरह हुक्म लिखकर, पुलीस कास्टेबिल के द्वारा देवीजी, रसोइया या माली के पास भेजा करते हैं।'

'तो मुझे क्या करना है ? इतना तो मैं आशीर्वाद दे सकता हूँ कि इस हुक्म देने के विषय मे बेटी पिता का अनुकरण करे। कहो तो गणेशजी को नारियल भी चढा दूँ ?'

'नही, नही ; उसकी कोई ज़रूरत नहीं है। आज शाम को मेरे साथ तुम्हे चलना होगा।'

'कहाँ ?'

'उनके बँगले पर।'

'क्यो ?'

'उन्होंने मुझे बुलावा भेजा है। देवीजी के कहने पर यह बात हुई है। वे चाहते हैं कि मैं आज शाम को उनके साथ टेनिस खेलकर, रात का भोजन भी वहीं करूँ और कल सवेरे उनके दफ्तर जाने तक वहीं ठहर जाऊँ।'

'ओ हो! मालूम होता है, तुम्हे खेलाकर तुम्हारी देह-शक्ति और मनोशक्ति की वे जाँच करेंगे, जैसे किसी बैल को खरीदते वक्त उसे दौड़ाकर परीक्षा किया करते हैं। भले ही करे! इसके लिए मेरे आने की जरूरत क्या है?'

'वे शायद जानते हैं कि सिर्फ मुझे ही बुलाने पर तुम-जैसा निठल्लू इसी तरह कहेगा, इसीलिए उन्होंने लिखा है—अपने साथ अपने एक मित्र को भी लेते आइये। चलो, बल्ला ले आओ।'

'अच्छा, मैं निठल्लू सही फिर कभी मौके पर इस बात के लिए बैर निकालूँगा। तुम्हे वे कैसे धमकाते हैं, यह देखने के लिए मैं ज़रूर चलूँगा।'

मेरा मित्र धन मे बहनेवाला है। उसके अगो मे कोई न्यूनता नहीं है। माथा-पच्ची करके दूसरों मे कभी जलन न पैदा कर, मगज़ को काबू मे रखने की क्षमता भी उसमे पर्याप्त है। उसकी इच्छा के विरुद्ध बोलने-वाले बन्धु भी उसके कोई नहीं हैं। इसलिए हमारी कार्य-सिद्धि मे सन्देह नहीं रहा। फिर भी हम सावधान रहे। चार बजे पहुँचने के बदले, पौने चार बजे ही हम बँगले से कुछ दूर पर जाकर ठहरे। वहीं हमने गाड़ी रोक दी और जब चार बजने मे दो मिनट थे, हम वहाँ से चले। ठीक चार बजे, हम बँगले के द्वार पर पहुँचे।

हंसराज अय्यगार बहुत खुश हुए। 'आइये, आइये!'—उन्होंने भेरी-ताड़न किया—मैं हमेशा कहा करता हूँ, छोटे कामो में ही बड़े गुणों की पहचान होती है। शक्तिमान् का पहला लक्षण है, नियत समय न टालना। जो लोग इतना भी नहीं कर सकते हैं, वे राज्य का भला क्या संचालन कर सकेंगे?

उनकी पत्नी ने कोमल शब्दो मे हमारा स्वागत किया। देवीजी के मुख पर सौम्यता की झलक थी। फिर भी न जाने क्यो उन दोनो को देखने पर, सर्कस के बाघ और उस बाघ की गरदन पर रस्सी बाँधकर उसे चलानेवाली महिला की याद मुझे हो आई।

चन्द्रमती भी कुछ लजाती हुई हमसे मिल-जुल गई। एक औरत—जो कुछ वर्ष पहले मेरे दक्षिण पार्श्व में वेदी पर बैठकर उठी थी—मेरी लिखी हरएक पंक्ति को पढ़ा करती है, इसलिए मै चन्द्रमती के बारे मे यहाँ कुछ नही लिखता।

पाँच बजते ही हम टेनिस खेलने गये। हम दोनो एक ओर थे और हसराज अय्यगार तथा उनके यहाँ के एक इन्स्पेक्टर दूसरी ओर। अय्यगार कैसे ही पहलवान क्यो न हो, वे अपनी चौवनवीं उम्र के फल का त्याग नही कर सकते थे। हमारे साथ वे दौड नहीं सकते थे। न जाने, उसी से क्रुद्ध थे या और कुछ, उनका चेहरा 'टमाटर' की तरह फूला हुआ था। लेकिन बलराम हमेशा की तरह खेल न सका। आसानी से पकड़ने लायक गेंद को वह कभी-कभी यों ही छोड़ देता। आखिर परिणाम यह हुआ कि दोनो ओर की सख्या सम थी—पाँच 'गेम' और 'वॅन्टेजाल्'। अगर अय्यगार के मुँह के पास कोई दियासिलाई ले जाता तो वह अपने-आप जल जाती। उन गेंदो को, जो हमारी हार-जीत का निर्णय करनेवाली थीं, उन्होंने 'सर्व' किया। बेचारे की थकावट, गेंद की मन्द गति से स्पष्ट थी। मैंने गेंद को धक्का दिया—अपने ही मुँह से अपनी प्रशसा करना ठीक नही है—द्रोणाचार्य का तीर भी शायद ही उतनी तेजी से लक्ष्य पर जा पहुँचता। हमारे दोनो प्रतिस्पर्द्धियो को लाँघकर, गेंद सीधे कोने की लकीर के पास जा गिरी।

'सेट!'—मैं चिल्लाया। इतने मे बलराम चिल्ला उठा—अरे मूर्ख! इस आखिरी गेंद को तुमने 'आउट' कर दिया और 'सेट' उनको दे दिया!

'आउट है?'—मै और अय्यंगार एक साथ बोल उठे।

'इसमे क्या शक है? डेढ उँगली चौड़ा 'आउट' है। मैं तो देख ही रहा हूँ। गेंद यही गिरी थी'—कहकर बलराम ने अपने पैर से एक लकीर खीचकर बताई। तब किसी को सन्देह क्यों हो? अय्यंगार का मुँह खिल उठा।

'खेल बड़ा अच्छा रहा! आप बहुत प्यासे होंगे। अभी आपके कमरे मे 'लेमनेड' भिजवा देता हूँ।'—अय्यंगार हँसते हुए अन्दर दाख़िल हुए।

बलराम इस तरह कमरे मे गया, मानो मेरे चेहरे को ही उसने न देखा हो। मै उसे यो ही छोड़नेवाला नही था। उसकी कमीज को खीचते हुए मैने कहा—तुम अपने को बड़ा चतुर समझते हो। मेरी जीत को मुझसे छीनकर तुमने अपने ससुरजी को दान कर दिया?

'हुश! चुप रहो!'—उसने कहा।

अन्दर अय्यगार की आवाज़ 'लाउड स्पीकर' की भाँति सुनाई दी।

'ख़ैर कुछ हर्ज नही, मेरे साथ इसी तरह खेला करेंगे तो शीघ्र ही 'टेनिस चैंपियन' बन जायँगे। अब भी उनका खेल कुछ बुरा नही है।'

बीच मे किसी के कुछ गुनगुनाने की आवाज़ कानो मे आई। फिर गर्जन की ध्वनि उठी—अभी से उनके मित्र चैंपियन-जैसे खेलते हैं! लानत है ऐसे खेल पर! पढने की उम्र मे पढाई की ओर अगर ध्यान देता तो, बताओ, इतनी अच्छी तरह टेनिस खेलना कैसे आता?... कुछ ऐसा भास हुआ कि किसी ने उनका मुँह बद कर दिया है।

हम लेमनेड पी रहे थे। एक कांस्टेबल कमरे मे आया और सलाम कर एक परचा दिया। परचे के ऊपर 'बँ० हु० 436-A' लिखा था।

'बँ० हु० क्या है?'—मैने पूछा।

कास्टेबल ने उसकी टीका की—बँगला हुक्म।

मैने पढा—

'बँ० हु० 436-A'

६ बजे से ७ बजे तक अतिथि लोग स्नान करेंगे।

७ बजे से ७-५५ तक अतिथियो के कमरे मे, घर की स्वामिनी और चन्द्रमती अतिथियों के साथ बातचीत करेंगी। मालिक दफ्तर का काम देखेंगे।

७-५५ को घंटी बजेगी।

८ बजे भोजन होगा। —जी० ह० अ०

इस ख्याल से कि मै कान्स्टेबल से कुछ न कहूँ, बलराम ने मेरे पैर को खूब दबाया। मै, यह समझकर कि प्रेम-देवता के लिए सब कुछ अर्पण करना ही होगा, दुःख और आश्चर्य को दबाकर चुपचाप बैठा रहा।

हम अपने साथ कुछ ज्यादा कपडे लाये थे। इसलिए हम ब० हु० 436-A' के मुताबिक अपनी थकावट मिटाने के लिए स्नान कर आये और गपशप करते बैठे रहे। उस बॅगले मे सभी काम मानो चाभी दी हुई घड़ी की तरह चलते थे। सात बज ही रहे थे कि चन्द्रमती और उसकी मा आई। कुछ देर तक क्रिकेट मैच के बारे मे और हॉल मे देखे हुए सिनेमा के बारे मे बातचीत हुई। देवीजी यह कहती हुई कि घर मे कुछ ज़रूरी काम है, वहाँ से उठकर चली गई। हम तीन ही रह गये थे।

दोनो के वार्तालाप मे विघ्न-स्वरूप वहाँ रहना मुझे संकट-सा प्रतीत हो रहा था। लेकिन कहाँ जाऊँ, कुछ समझ में नहीं आता था। अगर कहीं बाहर निकलूँ और अय्यगार से भेंट हो जाती तो वे पूछ बैठते—'ब० हु० 436-A' के विरुद्ध यहाँ क्यों आये? तब मै क्या जवाब देता? मेरी रुकावट को चन्द्रमती ने दूर किया। उसने कहा—पिताजी कहते हैं, आप एक चैंपियन की तरह खेलते है।

मैने कहा—हाँ, मैने भी कुछ-कुछ सुना था, उन्होंने वैसा ही कुछ कहा था।

'पिताजी कहते हैं, इतनी अच्छी तरह टेनिस खेलने का अभ्यास करने पर पढाई के लिए फ़ुरसत ही कब मिलेगी?'

'यह बात भी उन्होंने कही थी , मैने ठीक-ठीक सुनी थी।'

'मेरे पिताजी कहते हैं (मीठे स्वर मे)—लड़का बहुत तेज है। और कोई होता तो पढाई छोड़कर टेनिस खेलने पर बिलकुल मूर्ख रहता।'

मैने उस लडकी को नमस्कार किया—मै मूर्ख हो सकता हूँ। लेकिन मुझमे इतनी अक़्ल है कि, 'इस कमरे से बाहर जाओ।'—इस वाक्य को किसी भी गूढ रीति से कहने पर भी मै समझ सकता हूँ। मै गेट के पास खड़ा-खड़ा खगोल-शास्त्र पढूँगा। ७-५५ को मेरी प्रतीक्षा करे—यह कह फिर नमस्कार करके मै बाहर चला गया।

वॅ० हु० के अनुसार ७-५५ पर पहली घटी बजी। मैने कमरे मे प्रवेश किया। मेरी आहट पाकर उनकी वचन-शृङ्खला टूट गई और वे कुछ देर असमजस मे पड़े रहे।

फिर चन्द्रमती ने कहा—पिताजी आचारवान हैं। शर्ट पहनकर भोजन करना वे पसद नहीं करते।

तुरन्त हम दोनो ने अपना-अपना शर्ट उतार दिया।

'तुम्हारा जनेऊ कहाँ है, बलराम ?'—मैने प्रश्न किया। उसका जनेऊ ग़ायब था।

'गेंद खेलने के बाद जब मैने शर्ट उतार दिया, तब जनेऊ भी उसी के साथ चला गया होगा।'—कहकर दौड़ता हुआ, वह स्नान-घर मे गया। असफल प्रयास था! घड़ी की तरह काम होनेवाले उस घर मे नौकर हमारे कपड़ो को धोने के लिए समेट ले गया। इतने मे अय्यंगार के आने की आहट सुनाई पड़ी यज्ञोपवीत-हीन छाती को ढकने के लिए बलराम ने फिर नया शर्ट पहन लिया।

'क्यो, श ' उतार, भोजन करने चलिये।'—अय्यंगार ने कहा।

बलराम को कुछ न सूझा। वह गुनगुनाया—पेट मे कुछ दर्द-सा हो रहा है। सोचता हूँ, रात को कुछ नहीं खाऊँगा।

'पेट मे दर्द!—अय्यंगार उठे—इस उम्र मे पेट मे दर्द! छट! यह क्या, पेट-दर्दवाले लड़के से मेरी.. '

चन्द्रमती ने उनको समझाया—आज शाम को खेलते वक्त आपने उनको खूब दौड़ा दिया होगा। इसीसे पेट में दर्द हो रहा होगा। कुछ दिन आपके साथ अभ्यास कर लेंगे तो ..

अय्यंगार का मुख शान्त हुआ। कह सकते हैं, स्वल्प-संतोष ही हुआ था।

उनकी देवीजी, जो ये सब बातें सुन रही थीं, अफसोस करने लगीं—आपके लिए 'बड़े' और जलेबियाँ तैयार कराई हैं। कहिये तो थोड़ा जूस ही भेज दूँ ?

'जूस ! नहीं, नहीं। पेट के दर्द के लिए एक ही औषध है—लंघन। एक बार निराहार रहने से खूब खा सकते हैं'—कहकर, अय्यंगार मुझे बुलाते हुए अन्दर चले गये।

उस रात को मैं जब तक न सोया, तब तक बलराम भूख से तड़प रहा था। 'बड़े' और 'जलेबियों' का एक हजार मन्त्र-जप उसने किया होगा। ग्यारह बज गये। उस जप की ओर ध्यान न देकर मैं सो गया।

आधी रात बीत चुकी थी। मैं गहरी नींद में था। बलराम ने जोर से मुझे झकझोरा। मैं जाग उठा। 'बड़े,' 'जलेबियाँ'—यही उसने कहा।

'फिर वही जप !'—मैं गुनगुनाने लगा।

'सुनो ! फिर मत सो जाना। भूख की पीड़ा मुझसे सही नहीं जाती। रसोईघर में जाकर देखें तो सही कि खाने को कुछ है या नहीं।'

'इस वक्त रसोई-घर में क्या होगा ? पेट पर बेल्ट कसकर बाँध लो तो भूख बन्द हो जायगी। लेट जाओ, एक ही क्षण में सो जाओगे।'

मेरी बात उसने नहीं सुनी। 'वह बड़े और जलेबियाँ,—'

'कौन-से बड़े और जलेबियाँ ?'

'वही जो मेरे लिए बनाये गये थे, बच ही गये होंगे ! फिर इतने बड़े घर में चीज़ें हिसाब से थोड़े ही बनती होंगी ? कुछ-न-कुछ तो ज़रूर बचा ही होगा। रसोई-घर का रास्ता दिखा दो। नहीं तो तुम्हें छोड़ूंगा नहीं।'

मै क्या करता ? उसका उपद्रव मुझसे सहा नहीं गया। रात को मैने जहाँ भोजन किया था, वही अँधेरे मे इधर-उधर टटोलता हुआ, बलराम को ले पहुँचा। उसी के पास तो रसोईघर होगा। भूख की तीव्रता से बलराम की घ्राण-शक्ति दूनी हो गई थी और वह सीधे उसी आलमारी के पास जा पहुँचा, जहाँ भक्ष्य रखे गये थे। उसमे ताला नहीं लगा था, यह बलराम का भाग्य था। उस शान्त रजनी मे उसके जबड़े खड़खड़ाने लगे।

अगर वह भूख को मिटाने के लिए थोड़ा-बहुत खाकर तुरन्त लौट जाता तो सब ठीक ही होता।

लेकिन वह आलमारी को छोड़कर वहाँ से रवाना होनेवाला नहीं था। नीद की व्याकुलता से वहाँ खड़ा रहना मेरे लिए कठिन था। इसलिए मैने चाहा कि वहीं अपना आसन जमाऊँ और इसी ख्याल से दीवार से लगे-हुए पीढ़े को छुआ ही था कि इतने मे वह सरककर 'धड़ाड़' की आवाज़ के साथ नीचे गिरा।

मैंने बलराम को बुलाया—अरे, कोई आ जायँगे। चलो जल्दी। लेकिन तब उसको अपने आपको बचाने की चिन्ता ही नहीं थी।

'और चार ही बाकी हैं'—भक्ष्य से भरे मुँह से वह गुनगुनाया।

आगे यहाँ रहना आफत है, यह सोचकर मै वहाँ से चल पड़ा। सामने से एक आदमी आ रहा था, इसलिए मै दरवाजे के पीछे जा छिपा। मेरा दुर्भाग्य ही था कि वहीं बत्ती जलाने का 'स्विच' था। आनेवाला कोई पहरेदार-सा मालूम होता था। उसने स्विच दबाने के लिए हाथ बढाया। एक क्षण अगर देरी करता तो सन्देह नहीं कि सारा भडा फूट जाता। चन्द्रमती को अगर उसका मन-चाहा पुरुष मिलना है तो उसके लिए उसके घर का पहरेदार भला क्यो कष्ट उठायेगा ? कॉलेज मे फुटबाल खेलते वक्त, प्रतिस्पर्द्धी के पैर फिसलाकर उसे गिराने का मुझे काफी अनुभव था। यहाँ मैने उसी विद्या का प्रयोग किया। स्विच को छूने के पहले ही वह साष्टाग दडवत् करता हुआ नीचे गिरा।

उसके गिरने की आवाज और चिल्लाहट सुनकर घर-भर में खलबली मच गई। मैं भी वहाँ से दस फीट आगे बढकर अपने कमरे की ओर गया। तुरन्त कमरे से आनेवाले की तरह, 'क्या हुआ? क्या हुआ?' पूछता हुआ दौड़ा और गिरे हुए पहरेदार को उठाकर बैठाया।

सौभाग्यवश, इतने मे सभी जलेबियाँ खतम हो चुकी थी और बलराम फिर मनुष्य-जन्म मे शामिल हो गया था। उसने बड़ी चालाकी से काम लिया। 'चोर! चोर!' चिल्लाकर उसने स्विच दबाया। बॅगला बिलकुल नये फैशन का बना था और कमिश्नर का घर होने के कारण खिडकियो मे सीकचे नही लगाये गये थे। बलराम किसी खुली खिडकी को दिखाते हुए बोला—वहाँ भागा जा रहा है, चोर! उसी खिड़की के रास्ते से वह बाहर कूद पड़ा। कुछ कान्स्टेबल भी सोने के पदक पाने की आशा से उसके पीछे उसी तरह कूदे।

करीब पन्द्रह मिनट बाद फिर शान्ति हुई! चन्द्रमती, उसकी मा, अय्यगार और मैं—सब लोग बॅगले मे बैठे थे। खिडकी के रास्ते कूद-कर निकलनेवालों ने सारा बाग़ छानकर चोर को ढूँढा; पर कही उसका पता न लगा। वह रात बलराम के लिए योग-दायिनी थी। बड़े और जलेबियाँ तो मिली ही, साथ ही कूदते वक्त उसके हाथ का पिछला भाग थोडा-सा छिल गया था और छोटा-सा जख्म हो गया था। निडर होकर उसने चोर को पकड़ने की कोशिश की, इसके लिए दूसरे प्रमाण की आवश्यकता ही क्या थी? भावी जामाता पर अय्यगार बहुत प्रसन्न हुए।

लेकिन उनको सन्देह हुआ—चोर रसोई-घर मे क्योकर आया?

इतने मे खुली आलमारी को देखकर उनकी भार्या ने आश्चर्य प्रकट किया—अरे! यहाँ बारह बड़े और सोलह जलेबियाँ रखी थी! एक भी तो नहीं है!

वह पहरेदार, जो चारो खाने चित्त गिर पड़ा था, नाक पर हाथ फेरता हुआ खड़ा रहा।

चन्द्रमती ने प्रश्नो का उत्तर दिया—और कुछ नही है, पिताजी! चोर आपके 'ऑफिस रूम' मे से कोई काग़ज़ात चुरा ले जाने के लिए आया होगा। खिड़की खुली रहने से वह इसी रास्ते से रसोई-घर मे घुसा और मा के रखे हुए भक्ष्यो के वशीभूत हो गया।

बलराम ने कहा—चोर के पैरो से टकराने पर यह पीढ़ा नीचे गिरा। उसी आवाज़ को सुनकर मै दौडा आया।

'अगर मै कुछ देर पहले ही आ जाता तो भक्ष्य चुरानेवाला वह चोर इतनी आसानी से न बचने पाता और इस पहरेदार को नीचे गिराकर उसकी नाक न फोड़ता।'—मैं बोला।

इस तरह हम लोगो ने अपनी-अपनी युक्ति से सब बातो का पता लगाया। अय्यंगार को यही चिन्ता थी कि चोर आखिर नही मिला। चोर अगर मिल जाता तो उनको कितनी चिंता होती, यह बात बलराम और मै दो ही जने जानते थे।

चोर को ढूँढ निकालने के लिए उन्होने इस्पेक्टर चन्द्रशेखर को तुरन्त 'स्पेशल ड्यूटी' पर नियुक्त किया।

चन्द्रमती कुछ न कहकर मुस्कराई। शायद उसने सोचा होगा कि चोर पहले से ही अपने हाथो फँस गया है।

हम द्वार बन्दकर सोने जा रहे थे कि उसी वक्त एक कान्स्टेबल ने सलाम करके एक परचा दिया। मैने पढा—

'ब० हु० 436—B'

सवेरे ८ बजे सौभाग्यवती चन्द्रमती के विवाह की बात पक्की होगी।

प्रतिलिपियाँ—

(१) घर की स्वामिनी

(२) सौ० चन्द्रमती

(३) अतिथि-वर्ग

(४) पुरोहित शठकोपाचार्य

(५) इसके साथ लगी हुई सूची के सभी मित्र-गण—जी० ई० अ०

बलराम का मन शान्त हुआ। उसने पूछा—पुरोहित की प्रतिलिपि कौन ले जायगा ?

'मै ही ले जाऊँगा'—कान्स्टेबल बोला।

'तब तो—' बलराम ने शर्ट से पैसे निकालकर उसके हाथ मे दिये और उसके कानों मे कुछ कहा—भूलना मत। इसे पोशीदा रखो।

'नहीं सरकार, भूलूँगा नही। एक के बजाय दो लाने को कहूँगा।'

'दो क्या ?'—मैने पूछा—दो जनेऊ ? अजी, कान्स्टेबल ! ज़रा ठहरिये। विवाह के दिन ही दो जनेऊ की जरूरत पड़ेगी। लेकिन उसके लिए अब 'ब० हु०' जारी नही हुआ। विवाह निश्चित होते वक्त एक जनेऊ काफी है। उसके बाद विवाह, सीमन्तोन्नयन आदि अपने-आप चले आयेंगे—मैने आशीर्वाद दिया।

मीनी : : न० पिच्चमूर्त्ति 'भिक्षु'

[श्री पिच्चमूर्ति 'भिक्षु' का जन्म ईसवी सन् १९०० में हुआ था।—तमिल के कहानी लेखकों में आपका प्रमुख स्थान है। तमिल साहित्य मे नई 'टेकनिक' की कहानियाँ सबसे पहले आप ही ने लिखना प्रारम्भ कीं। आज भी नये ढंग के कहानी लेखकों मे आप अगुआ माने जाते हैं। आपकी शैली वर्णनात्मक और स्वतन्त्र है। कथानकों की मौलिकता आपकी विशेषता है। भाषा पर अच्छा अधिकार है, और वह कवित्वमय तथा अलंकारपूर्ण होती है। कला के सभी गुण आपकी कहानियों में पाये जाते हैं। जीवन की छोटी से छोटी घटना छोटे से छोटा खंड 'भिक्षु' जी ने अपनी कहानियों में खूब चित्रित किया है। और वह भी एक अनोखी सुन्दरता, स्वाभाविकता तथा सफलता के साथ। बाल-मनोविज्ञान का आपने बडी मार्मिकता से विश्लेषण किया है।

'मीनी' आपकी कहानियों का प्रतिनिधित्व करती है। पशु भी प्रेम करनेवालों को पहिचानते हैं; और घृणा करनेवालों को भी। 'मीनी' बाल-जीवन का एक सफल चित्र है। और उसका करुण अन्त! श्री पिच्चमूर्ति ने उसे जिस चरमता तक पहुँचा दिया है, वह उनकी अपनी चीज है।—सं०

नानी कान्तिमती के घर मे पिछली रात को ही मीनी आई होगी; क्योंकि रात भर अलमारी से धड़ाधड़ चीज़ो के गिरने और रसोई-घर मे बरतनो और करछियो के इधर-उधर लुढ़कने की आवाज़ सुनाई देती थी। बुढिया जान न सकी कि बात क्या है। वह थकी इतनी थी कि आधी रात मे उठकर देख भी नहीं सकती थी। 'हरामख़ोर चूहे होंगे!'—कोसती हुई वह फिर सो गई।

दूसरे दिन मुँह-अँधेरे उठकर, बुढ़िया जब प्रभाती और शिव-स्तोत्र गाती हुई चली, तो मीनी तिरछे दौड़ी। 'मुँहजली, मालूम होता है, तुम्ही ने रात भर ऊधम मचाया था। आज सुबह-सवेरे तेरा ही मुख-दर्शन बदा था...न जाने कौन-सी मुसीबत आनेवाली है।'—बुढ़िया मन-ही-मन गुनगुनाने लगी।

उसके बाद मीनी दिन भर कही दीख न पड़ी। उस दिन बुढिया जब तरकारी काटने बैठी तब उसके हाथ मे चाकू की चोट तक न लगी। वह सोचने लगी—अरे, सासतर भी इस तरह कही झूठ हो सकता है!

रात आई। 'फलाहार' के लिए बुटिया ने लड्डू बनाये और दूध हिफाज़त से रखकर वह भगवान के दर्शन करने मदिर गई। फलाहार की रखवाली का भार अपने नाती सूर्यनारायणमूर्ति और उसकी बहन गौरी को सौप गई।

सूर्यनारायणमूर्ति 'राम' शब्द रटने की धुन मे मस्त था। कुछ देर मे, गौरी—जो भाई के कर्तव्य को भी अपने ही काम के साथ निभा रही थी—दालान मे सो गई।

अदर थाली के लुढकने की आवाज सुनकर, 'सूरी' चौक पडा और भीतर दौड़ा। बिल्ली ग़ायब हो गई। कटोरे मे दूध कम हो गया था। बुढिया आयेगी तो नाक मे दम कर देगी—इसी डर से उसने थाली से कटोरे को फिर ढक देना चाहा। थाली उसने हाथ मे ली ही थी कि इतने मे नानी आ धमकी। एक ही क्षण मे बात खुल गई। बुढिया के तरकस मे जितनी गालियाँ थी, सब की सब बडी खूबी के साथ बाहर निकल आई। उसके बाद 'सूरी' को दो थप्पड़ लगे और निद्रालु गौरी को चार। जब अपने को सॅभालती और समेटती हुई गौरी उठी, तब छत पर 'म्याऊँ म्याऊँ,' रोती हुई बिल्ली बैठी थी। गौरी को ऐसा प्रतीत हुआ मानो वह उसी की हालत देखकर रो रही हो। उसने प्यार से पुकारा—मीनी!

उसी रोज से भाई-बहन मे मनमुटाव हो गया। सूरी की धारणा यह थी कि गौरी को रात के आठ ही बजे सो जाने का कोई अधिकार नही था, पढनेवाले को उसी के इच्छानुसार छोड़ देना स्त्री का धर्म है और इन सब बातो को भूलकर गफलत की नीद लेनेवाली गौरी, पति के घर जायगी तो वहाँ कभी अच्छा नाम हासिल नही कर सकती। गौरी ने

सोचा—वह तो खुद देख रहा था कि मुझे नींद आ रही थी और आँखें अलसा रही थीं, मैंने उससे कहा भी तो था ? चुटकी बजाते याद करने लायक़ सबक़ को वह निगोड़ा एक युग तक रटता रहे तो इसमें दोष किसका है ? बिलकुल फिसड्डी और फूहड़ लड़का है। रसोई-घर में ही दिया रखकर पढ़ता तो क्या हो जाता ? ये सब बातें तो उसने की नहीं ; उलटे नानी को खरी-खोटी सुनाकर मुझे मार खिलाई। उसके मगज़ में भूसा भरा है भूसा ! कमीने को पढ़ाई आयेगी तो कैसे ?

मीनी ने भी उस दिन से वहीं अपना अड्डा जमा लिया। स्वाद पाई हुई बिल्ली वहाँ से निकलेगी कैसे ? बुढ़िया कहीं इधर-उधर जाती तो यहाँ घी ग़ायब या दूध नदारद, भगवान् के भोग लगने के पहले ही बिल्ली रसोई को छू देती, सुतली को उलझा देती—इस तरह जितनी शरारतें बिल्ली को मालूम थीं, सब वह करने लगी।

एक दिन रसोई-घर में मीनी सो रही थी। नानी ने उसे नहीं देखा। 'यह पी ले रे, कॉफी'—कहकर वह पूजा के लिए फूल लाने बाग़ में चली गई। सूरी अपनी दवात, नोटबुक वगैरह ठीक तरह से रखकर आ ही रहा था कि इतने में कॉफी का आधा हिस्सा बिल्ली चट कर गई। नानी से उसने इस बात की रिपोर्ट की तो उसने आशीर्वाद दिया—तुम्हें यह भी चाहिये, और और भी। सूरी पर ख़ून सवार हो गया। वह झट भीतर से गरमागरम उबलता हुआ पानी ले आया और बिल्ली पर उँड़ेल दिया। लम्बे स्वर में 'म्याऊँ म्याऊँ' रोती-रोती वह भाग गई।

गौरी यह सब अपनी आँखों देख रही थी। उसके हृदय से एक ऐसी ज्वाला भभक उठी मानो गरम पानी उसी की देह पर डाला गया हो। उस समय से मीनी पर गौरी के प्रेम और आदर की मात्रा और भी बढ़ती गई। बुढ़िया और सूरी की आँख बचाकर, वह भात में घी मिलाकर पिछवाड़े लाती और मीनी को खिलाती। अपनी कॉफी में से कुछ बाक़ी रखकर, बरतन माँजने के बहाने कुएँ पर जाती और मीनी

को कॉफी पिला आती। दोपहर को जब नानी सो जाती या पचीकरण करती, तब मीनी के साथ पिछवाड़े खेला करती।

चलते-चलते एक दिन सारा भंडा फूट गया। अब दोनो को लाज न रही। अब तो पाँचो उँगलियाँ घी मे हो गई। जब गौरी कॉफी पीती या भात और मिठाई खाती, तब खुले तौर पर मीनी उसके पास आकर चिल्लाती। गौरी बड़े ही सौहार्द से अपना कुछ भाग उसे दे देती। मीनी गौरी को प्रेम से पुचकारती।

बिल्ली के बारे मे बुढ़िया के विचार कुछ निराले ही थे। कितनी ही सावधानी से क्यो न रहे, बुढ़िया आखिर घर के किसी काम-काज म मीनी से धोखा खा ही जाती थी। अलावा इसके, रोज़ सबेरे उठते-उठते बिल्ली का दर्शन! मीनी पर उसका क्रोध वैसा ही गुप्त था जैसे बोतल मे बन्द फासफरस। मीनी के अभाव म उसके बदले सोने की बिल्लियाँ बनवाकर दान देने लायक जायदाद बुढिया के पास थी कहाँ? इसी कारण बुढिया की सारी आतुरता का लक्ष्य गौरी ही बनी!

सूरी के विचार कुछ और ही थे। जिस दिन वह मीनी के कारण पिटा, उसी दिन से उसको किसी न किसी तरह खतम करने का उसका ख़याल था। पर बीच मे जो गौरी खड़ी है। एक और भी बात थी। सूरी को देखते ही मीनी भाग खड़ी होती और गौरी को देखते ही उससे मीठी बात करती। मीनी का यह व्यवहार सूरी को बिलकुल अच्छा न लगता। उसे यही दुःख था, कि एक बिल्ली तक मेरी कोई परवाह नही करती। ये सब विचार सूरी को यही उपदेश दे रहे थे कि एक ही समय पर एक साथ गौरी और मीनी का गर्व चूर कर दे।

एक दिन सवेरे एक टूटी दीवार के पीछे मीनी पाँव फैलाकर आराम से लेटी हुई थी। सूरी ने उसको देख लिया और एक बड़ा-सा बोरा लाकर उसम उसे लपेटकर हाथ मे उठा लिया। बुढ़िया यह देखकर चिल्लाने लगी—अरे! बिल्ली की हत्या मत कर। प्रायश्चित्त करने के लिए पैसा भी नहीं है।

'कुछ नही करता, नानी। तुम डरो मत'--कहते हुए सूरी ने मीनी को एक लोहे के पिजरे मे बन्द कर दिया। सरकस में जैसे शेर और बाघो को शिक्षा देते हैं और 'ऐसा करो', 'वैसा करो' कहकर जैसा चाहे उन्हे नचाते हैं, वैसे ही बाघ के बदले बिल्ली को शिक्षा देकर गौरी को देखते ही वह भाग जाय, ऐसी तालीम उसे देने का सूरी का इरादा था। मीनी कुछ देर तक चिल्लाती रही। फिर पिंजड़े मे ही इधर-उधर टहलती हुई, लोहे के छड़ो के बीच अपना मुँह ठूसने लगी। उसके बाद सीकचों को अगले पैरो से खरोंच कर देखा। कोई लाभ न हुआ। फिर पहले की तरह चक्कर काटने लगी। कुछ देर बाद सूरी ने बिल्ली के लिए दूध ला रखा। न जाने किस कारण उसने दूध पीने से इनकार कर दिया। आँखे मूँदकर वह किसी उधेड़बुन मे मग्न थी।

मीनी पर जो कुछ बीत रही थी, वह सब गौरी को मालूम था। लेकिन खुल्लम-खुल्ला सूरी से वैर मोल लेने की ताक़त उसमे कहाँ थी? फिर भी मीनी की हालत पर वह सर्वथा निश्चिन्त न रह सकी। उस दिन उसे खाना भी अच्छा न लगा। वह रात होने की प्रतीक्षा मे थी।

रात के नौ बजे होगे। इस डर से कि बिल्ली कही पिंजरे मे ही मर न जाय, बुढिया धीरे-धीरे पिजरे के पास गई। पिंजरे को वैसे ही उठा ले जाकर मीनी को बाहर छोड़ आने की उसकी इच्छा थी। वहाँ कुछ अँधेरा छाया हुआ था। अँधेरे मे एक दूसरा व्यक्ति भी दीख पड़ा।

'कौन हो?'—बुढ़िया ने पूछा।

गौरी ने, जिसको बुढिया सोई हुई समझती थी, उत्तर दिया—मै ही हूँ।

नानी ने पूछा—अँधेरे मे यहाँ क्या कर रही हो?

गौरी ने जवाब मे फिर प्रश्न किया—तुम क्या करने जा रही हो, नानी?

'घबराओ मत। तुम्हारी बिल्ली को गली में ले जाकर छोड़ आने-वाली हूँ। नही तो सूरी उसका खून पी जायगा ...तुम यहाँ अँधेरे मे क्या कर रही हो?'

'कुछ नहीं'—गौरी ने झूठ कहा। सच बात तो यह थी कि शाम को उसे जो कॉफी मिली थी उसमे से कुछ बचाकर उसने अभी-अभी मीनी को पिला दी थी।

बुढ़िया ने कहा—अच्छा, तुम यहीं रहो। मैं इसे छोड़ आती हूँ।

गौरी न तो मीनी को खोना चाहती थी, न उसे अपराधियों की भाँति कठघरे मे बन्द ही देख सकती थी। अन्त मे इस धैर्य से कि कहीं भी वह सही-सलामत रहे तो बस है, उसने कहा—अच्छा नानी ले चलो इसे। यह कहकर वह भी नानी के साथ गली तक हो आई और मीनी को वहीं छोड़ आई। बुढ़िया का दिल खुश हुआ कि बला टल गई। दु.ख से गौरी का गला भर गया। दोनो सोने चली गई।

आधी रात का वक्त था। एक और व्यक्ति आया—बिल्ली की हाज़री लेने! इसमे शक क्या है कि वह सूरी ही था। उसने अँधेरे मे झुककर देखा तो पिंजरा ही पिंजरा था, बिल्ली गायब। बड़वानल की तरह उसका क्रोध बढने लगा। उसने प्रण कर लिया—देखूँगा उस गौरी को। रात मे बिल्ली को भगा देने की बात कब तक छिपी रहेगी? खैर, अब इसका मजा चखाऊँगा।

दूसरे दिन सवेरा हुआ। बुढ़िया बिछौने पर से उठी तो पहले उसे मीनी के ही दर्शन हुए। उसने सर पीट लिया—राम राम! यह तो आफत फिर आ ही गई? लेकिन गौरी के ओठों पर हँसी थिरक रही थी। जब वह पिछवाड़े की ओर दाँत साफ़ करने गई तब चूल्हे की छत पर बिल्ली सिकुड़ी बैठी थी।

'अरी मीनी!'—गौरी ने पुकारा।

'म्याऊँ, म्याऊँ' करती हुई बिल्ली उसके पास आई।

'अब मुझे छोड़कर नहीं जाओगी न? अच्छी हो तुम, मीनी! तुम सोने की डोरी, मेरी आँखो की पुतली हो!'

'म्याऊँ, म्याऊँ।'

'सूरी अगर देखेगा तो तुम्हें भागा हुआ चोर समझकर तुम्हारा खून कर डालेगा—क्या करूँ ?'

'म्याऊँ, म्याऊँ ।'

इस तरह गौरी और मीनी अपनी प्रेम-भाषा मे बातचीत कर रही थीं कि इतने मे सूरी भी वहाँ आ पहुँचा ।

आँखे मटकाते हुए उसने कहा—क्यों री गौरी, मालूम होता है, तुम्हारी बिल्ली जादू भी जानती है ! पिंजड़े मे से अपने-आप को छुड़ाकर भाग ही गई ?

'चलो रे बंदर ! ये सब बाते तुम्हें क्या मालूम ?'—गौरी ने व्यंग-बाण छोड़ा ।

मीनी यों सहम गई मानो काल-भैरव को देख रही हो ।

सूरी इस अपमान को सह न सका । उसने मन ही मन यह संकल्प कर लिया कि अगर मै तुझे यह न दिखाऊँ कि मै गौरी का भाई हूँ तो मेरा नाम नही । लेकिन उसने कोई दुस्साहस का काम नहीं किया, युक्ति से काम लिया ।

उसने एक सुन्दर मार्मिक भाषण दिया—देखो गौरी, मीनी तुमको कितना चाहती है । गये जन्म मे तुम उसकी बहन थी । इसीलिए तो वह तुमसे तुतलाती है । तब मै एक चूहा था । इसी से तुम दोनो को मुझ पर गुस्सा आता है । अच्छा, पुरानी बात को तो जाने ही दो । आगे से हम दोनो मेल-जोल से रहे, क्यों है न ठीक ?

गौरी तो बौड़म थी ही । इस भाषण से उसका दिल पिघल गया । इस खुशी से कि अब भाई को अक्ल आ गई है, उसने अपनी मिठाई का एक हिस्सा भी उसे दिया ।

दस बजते ही सूरी मदरसे चला गया और दोपहर को लौट आया । दोपहर के भोजन के बाद उसने एक मैला कागज़ निकालकर उस पर लिखा—

'मास्टर साहब को,

मेरा सिर बहुत-बहुत दुख रहा है। नानी ने कह दिया है कि दोपहर के बाद मदरसे न जाना। मुझे सोंठ और कालीमिर्च का लेप लगाया गया है। मुझे छुट्टी चाहिये।

टी० सूर्यनारायणमूर्ति'

उसने पड़ोस के लड़के के द्वारा यह चिट्ठी भेज दी। नानी से उसने कहा—पेट मे बड़ा दर्द हो रहा है, नानी। मै पाठशाला नही जाऊँगा। वह चटाई बिछाकर उस पर दो-चार बार इधर-उधर करवटे बदलने लगा। नानी ने भी बच्चे को थोडी अजवाइन और पान खिला दिया और चश्मा लगाकर ज्ञानवासिष्ठ पढने मे मशगूल हो गई।

सूरी ने समझा, यही अच्छा मौका है। वह धीरे-धीरे वहाँ से खिसक गया। घर के दोनो ओर कही गौरी का पता नही था। 'चोर पिछवाडे होंगे'—यही सोचकर, वह गुल्ली डंडा लेकर उसे पीठ के पीछे छिपाता हुआ पिछवाड़े की तरफ चला।

गौरी एक पाँव को पसारकर आनन्द-सागर मे मग्न बैठी थी। उसके सामने पाँसे पडे थे। मीनी उनको काट और चाट रही थी। मीनी को मारना सूरी का लक्ष्य नहीं था। जैसे मदरसे मे अध्यापक 'रूलिंग-स्टिक' से सिर पर थपकते हैं उसी तरह अगर मीनी को भी दो-एक बार थपथपा दूँ तो वह रास्ते पर आ जायगी—यही उसका खयाल था। गौरी की नजर बचाकर, वह धीरे-धीरे उसके पीछे जा खडा हुआ और एक डंडा चलाया। उसे आशका नही थी कि मार इतने ज़ोर से पडेगी। मारने के पहले ही गौरी देख न ले—इसी डर से उसने अपने-आपको भूलकर डंडा चला दिया था और डडा जोर से मीनी पर जा लगा।

मीनी रोती-चिल्लाती, अपनी टूटी हुई कमर को खीचती हुई पास की एक झाड़ी में छिप गई।

सूरी की नस-नस मे डर समा गया। उसे उसने झूठे सवालो से छिपाना चाहा। 'क्यो री गौरी! मैने तो यो ही हँसी-खेल मे उसे धीरे-

धीरे थपथपाया था ! तुम्हारी ही तरह तुम्हारी बिल्ली भी, तिनके का पहाड़ करके हाहाकार मचाने लगी ?'

गौरी वैसी ही खड़ी रही, कुछ जवाब नहीं दिया। उसके चेहरे पर हवाइयाँ उड़ रही थीं। वह बिल्ली के पास गई और उस पर हाथ फेरने लगी। पर मीनी वह पुरानी मीनी नहीं थी। झाड़ी के भीतर से ही वह साँप की तरह से फुफकारने लगी। 'मीनी ! मीनी !! मैं तो गौरी हूँ, तुम-हम एक हैं। मुझसे क्यों नाराज होती हो ? हत्यारे सूरी ने ही तो तुम्हें मारा था ?' वह रोती हुई आरजू-मिन्नत करने लगी। मीनी फुस-फुस करती हुई उस पर टूट पड़ी और गौरी के हाथों को अपने नाखूनों से खरोंच डाला। उसे शायद बहुत व्यथा हो रही थी। गौरी को वह खरोंच कोई बड़ी बात प्रतीत न हुई। उसे दुःख इस बात का था कि मीनी अब उसको भी देख कर काँपने लगी थी। दुःख के कारण रोना आ गया, आँसू की झड़ी लग गई। गौरी को रोती देख सूरी की आँखें अनजाने भर आईं। भाई और बहन, एक दूसरे को देखते हुए सिस-कियाँ भर रहे थे। रोना थम जाने पर सूरी मीनी के पास गया और दवाई करने की कोशिश की। मगर कोई फायदा न हुआ। दोनों हाथ मिलाये हुए भीतर चले गये।

रात आई। नानी ने गौरी से पूछा—कहाँ है मेरी प्रतिवादी—तुम्हारी मीनी ?

गौरी ने आँसू पोंछते हुए कहा—चलो नानी, तुम्हें और कुछ काम नहीं है ?

उसी रात के दस बजे बरसात शुरू हो गई। एक ही चटाई पर लेटे हुए सूरी और गौरी ने मीनी की भलाई के लिए परमेश्वर से प्रार्थना की कि बरसात लौट जाय।

दूसरे दिन सवेरे उस समय, जब कि चिड़िया, मुर्गे और नन्हे-नन्हे बच्चे उठा करते हैं, दोनों उठे और झाड़ी में जा देखा। बिल्ली वहाँ दिखाई नहीं दी। उन्हें प्रसन्नता हुई कि वह और कहीं चली गई होगी।

संध्या का समय था। हवा ज़ोरों से चल रही थी। सारे पेड़ पैशाचिक नृत्य कर रहे थे। नारियल की डालें और पेड़ों से गिरी हुई पत्तियाँ सड़कों पर इधर-उधर पड़ी थी। सूखे पत्तों का बवंडर-सा उठ रहा था। ईशानकोण में काले-काले बादलों की घटाएँ छाई हुई थीं, मानो समुद्र ही उमड़ा आ रहा हो। ओ हो! यह वर्षा का प्रारम्भ था!

मदरसे से जब सूरी लौट आया तब उसके मन में एक भय, एक संदेह था—हमने सवेरे अँधेरे में बिल्ली को शायद ठीक तरह से नहीं ढूँढा। अगर बात वही हो तो दूसरे दिन भी मीनी पानी में भीग जायगी—इसी विचार से वह गौरी को भी साथ लेकर पिछवाड़े गया।

मालूम हुआ कि सवेरे जिस चीज को पुरानी पत्रिका या सूखे पत्तों का ढेर समझकर उन्होंने उसकी परवाह नहीं की थी, वहीं मीनी थी। बच्चों का दिल पानी-पानी हो गया। जल्दी-जल्दी वे दोनों घर में गये और एक-एक कौर घी मिला हुआ भात लाकर मीनी के सामने रख दिया। बिना लालसा के ही उसने थोड़ा-सा खा लिया। कम से कम उस दिन वह पानी में न भीगे—यही सोचकर बच्चों ने मीनी को पकड़कर घर में लाना चाहा। दर्द से कराहती हुई, उसने दोनों के हाथों को चीर-फाड़कर घायल कर दिया। गौरी एकटक सूरी को देख रही थी। वह सिर झुकाकर, अपने पैर के अँगूठे से जमीन को कुरेद रहा था। पानी पड़ते ही दोनों बच्चे भीतर चले आये।

उस दिन से ऐसा पानी पड़ा कि आठों दिशाएँ पानी से एकदम भर गईं। जल प्रलय था, घर से बाहर पैर निकालना मुश्किल था। तो भी दोनों बच्चे रोज़ झाड़ी के पास जाकर मीनी को कुछ न कुछ खाना दे आते थे। तीसरे दिन जब वे गये, तब मीनी काठ की तरह पड़ी थी। बेचारे, दोनों बच्चे फूट-फूटकर रोये। नानी ने उन्हें आश्वासन तो दिया, लेकिन उससे एक कानी कौड़ी का भी फ़ायदा न हुआ।

———

खत और आँसू : कृष्णमूर्ति 'कल्की'

[श्री कृष्णमूर्ति 'कल्की' का जन्म १९०२ ईसवी में हुआ था।

'आधुनिक तमिल हास्य-लेखकों मे आप अग्रणी हैं। एक सफल कहानी-लेखक के अतिरिक्त आप सफल निबन्ध-लेखक भी हैं। राजनैतिक विषयों पर लिखे आपके व्यंगात्मक लेख अजोड होते हैं और जनता द्वारा खूब पढे जाते हैं। आप उच्चकोटि के सम्पादक भी हैं। आज तमिल-प्रान्त की साहित्यिक जागृति और वहाँ जनता में पत्र-पत्रिकाएँ पढने की सुप्रवृत्ति का सारा श्रेय आप ही को है। आपको तमिल-भाषा मे जन साहित्य का स्रष्टा कहा जा सकता है। आपकी चुनी कहानियों के दो-तीन संग्रह भी प्रकाशित हो चुके हैं। आजकल आप मद्रास के सुप्रसिद्ध हास्य-रस के पत्र 'आनन्द विकटन' के सम्पादक हैं।

'खत और आँसू' आपकी अन्य कहानियों मे भिन्न, पर आपकी शैली का एक सुन्दर उदाहरण है। उदात्त प्रेम की भावनाएँ किसी के जीवन को कितना सेवा-परायण और उच्च बना देती हैं, इसका सफल चित्रण प्रस्तुत कहानी है। पाठक को हठात् अचरज में डाल देनेवाले गुण का इसमे प्राधान्य है। फिर भी यह जीवन के प्रति विचार की एक नई धारा को जन्म देती है। अपठित विधवाओं को यदि प्रेरणा मिले, अनुकूल वातावरण मिले, तो वे भी एक उच्च जीवन जी सकती हैं। समाज और देश के लिए उपयोगी हो सकती हैं।—सं०]

(१)

सुप्रसिद्ध महिला-विद्यालय की संस्थापिका और प्रधान अध्यापिका, बहिन अन्नपूर्णा देवी, नियमानुसार एक दिन शाम को विद्यालय के उद्यान मे टहल रही थी, जो विद्यालय को चारो तरफ़ से घेरे हुए था। विद्यालय से कुछ दूर के एक बँगले से शहनाई का स्वर सुनाई दे रहा था, जिससे उनको कई पुरानी बातों का स्मरण हो आता था। उनके चेहरे पर, जहाँ हमेशा शान्ति विराज रही थी, एक ही निमेष मे किसी क्रान्ति का आभास मिला और दूसरे ही क्षण वह ग़ायब हो गई ; उसी तरह जैसे प्रशान्त महासागर से अचानक ही एक बड़ी भारी लहर उठ

कर, किसी चट्टान पर टकराती हुई, उसे एक क्षण-भर तक डुबोकर, दूसरे ही क्षण गायब हो जाती है और फिर उस महासागर में पहिले-जैसी शान्ति फैल जाती है। लहर उठने के स्मृति-स्वरूप, जैसे उस चट्टान के गड्ढों में पानी टिका रहता है, वैसे ही अन्नपूर्णा की आँखों में भी आँसू छलछला रहे थे।

उसी मार्ग में, विद्यालय की सहायक अध्यापिका श्रीमती सावित्री एम० ए०, एल० टी०, को सामने आते देखकर, अन्नपूर्णा देवी ने झट अपने आँसू पोंछ लिये और स्मित-हास्य के साथ सावित्री का स्वागत किया। दोनों पास ही में नीम के पेड़ के नीचे बने एक चबूतरे पर बैठ गईं।

× × ×

महिलाओं की सेवा में ही अगर किसी के सिर के बाल पक गये हैं, तो वह बात अन्नपूर्णा के बारे में ही चरितार्थ होती है। उनके भाल को ढकनेवाले, निबिड़ बढ़े हुए, रजत-धवल केशों को देखते ही पहाड़ की चोटियों पर कतार बाँधकर छाये हुए सफेद बादलों का दृश्य स्मृति-पट पर अंकित हो जाता था। बाल के इस तरह पक जाने पर भी, उनके मुख को देखने पर कोई यह नहीं कह सकता था कि वह पचास के ऊपर हैं। ऐसा प्रतीत होता था मानो उन्होंने अनन्त यौवन के रहस्य को ढूँढ निकाला हो। सफेद साड़ी, सफेद बालोंवाले सिर और शान्तिपूर्ण उज्ज्वल मुखवाली बहिन अन्नपूर्णा को देखनेवाले उन्हें सरस्वती का अवतार ही समझते थे।

अन्नपूर्णा का जीवन वृत्तांत तो मशहूर और सब लोगों को मालूम था। अपने नौवें वर्ष में, वास्तविक सचेत संसार में आने के पूर्व ही, वैधव्य का शिकार होने का दुर्भाग्य उनकी तक़दीर में बदा था। उनका वही दुर्भाग्य स्त्री-समाज का अहोभाग्य हुआ। बाद के दिनों में उन्होंने पढ़कर बी० ए०, एल० टी०, की पदवी हासिल की। तब से वे, यौवन में पतिहीना स्त्रियों, पति के द्वारा अनादृत युवतियों, अनाथ अबलाओं

आदि की सेवा में ही अपना जीवन बिताने लगीं। अपने लक्ष्य की पूर्ति में एक साधन समझकर उन्होंने इस महिला-विद्यालय की स्थापना की और अपना तन-मन-धन सब कुछ उसी के अर्पण कर दिया।

सहायक अध्यापिका श्रीमती सावित्री देवी तरुण अवस्था की थी। उसकी उम्र यही कुछ पच्चीस की होगी। अब तक उसका ब्याह नहीं हुआ था। तीन साल पहले एम० ए०, एल० टी० की परीक्षा में उत्तीर्ण होकर जब वह इस विद्यालय में सहायक अध्यापिका होने आई, तब यद्यपि वह वेतन के लिए ही आई थी, तो भी बाद में बहिन अन्नपूर्णा की संगति से उसकी मनोवृत्ति एकदम बदल गई। कभी-कभी उसने यहाँ तक सोचा कि अन्नपूर्णा जी की तरह मैं भी स्त्री-समाज की सेवा के लिए अपना जीवन क्यों न अर्पित कर दूँ।

× × ×

सावित्री ने कहा—जीजी, आज कविता का पाठ सिखाते वक्त मुझे बहुत परेशान होना पड़ा। 'प्रेम से ही यह दुनिया चलती है' ऐसी एक पंक्ति उसमें थी। पन्ना ने पूछा—कवि यहाँ किस प्रेम का उल्लेख करते हैं? बड़ी नटखट लड़की है पन्ना!.. सुनिये, उसकी हँसी गूँज रही है!

बाग़ की दूसरी ओर कुछ लड़कियाँ हाथ से गेंद खेल रही थीं। वहाँ से एक कहक़हा उठा जिसकी गूँज दक्षिण-पवन में लहराती हुई आ रही थी।

'पन्ना के प्रश्न का तुमने क्या उत्तर दिया?'—अन्नपूर्णा ने पूछा।

'उत्तर देने में मैं बहुत हिचकिचाई। कवि यहाँ 'प्रेम' से स्त्री-पुरुष के प्यार को ही सूचित करते हैं। लेकिन यह बात मैं उन लड़कियों के सामने कैसे कहती? साधारण लड़कियों को समझाना भी कठिन है। जब मैं 'क्वीन मेरीस' कॉलेज में पढ़ रही थी, तब मेरी अध्यापिकाओं पर जो बीत रही थी वह मुझे खूब याद है। यहाँ तो सभी स्त्रियाँ विधवाएँ, या पति परित्यक्ताएँ हैं—इनके सामने मैं प्रेम के बारे में कहूँ तो क्या?..'

इस प्रकार सावित्री कहती जा रही थी कि बीच ही में झट उसने बोलना बन्द कर दिया। उसे झट यह बात याद आई कि बहिन अन्नपूर्णा भी बचपन मे पति को खो चुकी हैं और उसके मन में खटका कि उसने कुछ अनुचित ही कह दिया है। बात बदलने के लिए उसने फिर कहा—सच पूछो तो, बहिनजी, यह सब बिलकुल पागलपन मालूम होता है। प्यार-व्यार सब, बिल्कुल भ्रम ही है न ? बेकार कवियों के व्यर्थ मनोराज्य के सिवाय यह और कुछ नहीं

तब अन्नपूर्णा ने कहा—अच्छा, यह बात है ? सब भ्रम है ? बहुत ठीक, मै डॉक्टर श्रीनिवासन को वैसा ही लिख देती हूँ।

सावित्री का डॉ० श्रीनिवास के साथ विवाह होनेवाला था। इस बात की ओर ही अन्नपूर्णा का इशारा था। सावित्री ने एक लज्जायुक्त हँसी हँसकर कहा—हाँ तो, कौन जाने ? आज सच मालूम होता है। दो साल बाद, किसे मालूम, क्या होगा ?—इन बातों को तो जाने दीजिये, जीजी, कवि जो यह कहता है कि, 'दुनिया का कोई भी बड़ा काम प्रेम से ही होता है', वह झूठ ही तो है ? वह ठीक कैसे हो सकता है ? इसी विद्यालय को लीजिये, जो पच्चीस साल से चल रहा है। कन्याकुमारी से लेकर काश्मीर तक ऐसा कोई नहीं जो इसकी तारीफ न करता हो। ऐसा भी कोई नहीं जो आपकी सेवा की प्रशंसा न करता हो। इस सेवा-सदन के बारे मे कवि की उक्ति कैसे चरितार्थ हो सकती है ?

'सावित्री, दुनिया के और बड़े-बड़े कामों के बारे मे मै कुछ नहीं जानती। कवि की बात उन सबके बारे मे चरितार्थ होती है कि नहीं, यह मै नहीं जानती। लेकिन अगर मेरी सेवा एक बड़ा कार्य समझी जाय, तो उसके बारे मे कवि का कथन बिल्कुल अन्वर्थक होता है। मेरे प्रयत्नों का मूल कारण प्रेम ही था '

'नहीं कौन कहता है ? अनाथ दीनों पर आपका प्रेम तो प्रसिद्ध है ही !'

'उस प्रेम के बारे मे मै नहीं कहती। कवि के कथित प्रेम को ही कहती हूँ। अगर मैने कोई सेवा की है, तो वह सब प्यार नामक बीज से उगी हुई है।'

सावित्री को यह सुनकर विस्मय हुआ। उसने आतुरता से पूछा—सच जीजी, सच कहती हैं? तो मुझे सारी बाते सुनाइये।

(२)

अन्नपूर्णा ने कहा—

'शादी के घर से शहनाई की आवाज हवा मे तैरती जो आ रही है, सुनती हो न? वीरस्वामी, रीतिगोड़ राग को कैसे अजीब ढग से गा रहा है। तुम्हे देखने के एक क्षण पहिले जब वह स्वर मेरे कानो मे पड़ा तब मेरी बाल्य-स्मृति जाग उठी। जिन आँखो मे लम्बी मुद्दत से आँसू नही आये थे उन आँखों से भी आँसू निकल ही पड़े। कई साल पहले, एक शादी के वक्त, इसी राग को शेम्पोन्नार कोइल का रामस्वामी गा रहा था। उस ज़माने मे शहनाई बजानेवालो मे उसी का नाम मशहूर था. .'

'ये सब बाते आपको अब तक याद कैसे हैं, जीजी? मैने तो सुना था कि आपका व्याह बिल्कुल बचपन मे हुआ था?'

'मै अपनी शादी के बारे मे नही कहती। कहते हैं, छठे साल मे मेरा व्याह हुआ था। नौवें मे मै विधवा हुई। वे सब बाते मुझे अब अस्पष्ट स्वप्न की तरह कुछ-कुछ याद हैं। उतनी छोटी उम्र मे विधवा होने मे एक सहूलियत भी थी। अरे, तुम तो हँस रही हो? सचमुच बात वैसी ही है। और चार-पाँच साल बाद मे होती, तो और सब लोगों की तरह मेरा भी सिर मुँड़ाते और मेरी दुर्गति करते। तब लोगों ने मुझे बिना कुछ किये ही छोड़ दिया।

'मै अपनी चचेरी बहिन के व्याह का उल्लेख कर रही हूँ। अबुजम् मुझसे उम्र मे दो वर्ष छोटी थी। उसके विवाह के वक्त मेरी उम्र सोलह की होगी। अम्बुजम् मुझे हृदय से चाहती थी। जब से मै विधवा

हुई, तब से चाची के घर मे ही रहने लगी थी। मेरा दुर्भाग्य देखकर घर के सभी लोग मुझसे प्यार करते थे। घर के सभी काम-काज मेरी ही राय से चलते थे।

'अम्बुजम् का ब्याह जब निश्चित हो गया तब मेरी ही इच्छानुसार सब इन्तिजाम किये गये। दामाद के लिए कैसी धोती खरीदी जाय, किस शहनाईवाले का बन्दोबस्त हो, चौथे दिन (कुछ साल पहले तक तमिलो मे ऊँचे घरानेवालो के यहाँ शादी पाँच दिन की होती थी, पर अब प्राय. एक ही दिन मे शादी की रस्म पूरी हो जाती है।) भोज के लिए कौन-सी मिठाई बने—ऐसी सभी बाते मेरे ही परामर्श पर निश्चित की गई।

'विवाह से पूर्व रात्रि को दामाद को बुलाकर लगन इत्यादि का निश्चय हुआ। घराती स्त्रियो के झुण्ड मे मै भी थी। चौकी पर बैठी हुई अम्बुजम् के सिर से जवाहिरात जड़ा हुआ जूड़ारतन खिसक पडा और मालूम होता था, वह नीचे गिर पड़ेगा। उसके पास गई और उसे ठीक लगाकर मैने सिर उठाया, तो देखती हूँ कि दामाद के पास ही बैठे हुए एक युवक मुझे ग़ौर से देख रहे है। उसी क्षण मेरा सारा बदन सिहर उठा। सिर चकरा गया। मुझे डर लगा कि शायद बेहोश होकर गिर पड़ूँगी। भाग्यवश, वैसी कोई दुर्घटना नही हुई।

'उनके मुख को फिर देखने की लालसा मेरे मन मे उबल उठी। मैने सपने मे भी नही सोचा था कि ऐसी भी कोई लालसा हो सकती है। भर-सक मैने मन को काबू मे लाने का प्रयत्न किया और अपनी उत्सुकता को बलपूर्वक दबाया। कोई फायदा न हुआ। आखिर जब मैने उनकी ओर देखा, तभी उन्होने भी मुझे देखने के बाद सिर दूसरी ओर फेर लिया।

'उस रात मै सो न सकी।

'दूसरे दिन अम्बुजम् का ब्याह धूमधाम से हो गया। बाहर से तो मै हमेशा की भाँति अपने कामो को देखती-भालती थी, पर मेरा मन किसी निराले ही लोक मे भ्रमण करने लग गया था।

'विवाह के दिन रहा-सहा सन्देह भी दूर हो गया। उन्होंने मुझे यों ही सयोगवश नहीं, स्वेच्छापूर्वक ही देखा था। मेरे मन की अवस्था भी अब कुछ स्वस्थ हो चली थी। बिजली की शक्ति की तरह वह कोई शक्ति थी, जिसने मुझे उनकी ओर आकर्षित किया, यह मै जान गई।

'देखती हो, वह जो पूर्ण चन्द्र निकला आ रहा है!...'—जब बहन अन्नपूर्णा देवी ने इस प्रकार प्रश्न किया, तब सावित्री ने चन्द्रमा की ओर देखा।

''पूर्णचन्द्र को उसके पहले भी मैंने कई बार देखा था, लेकिन अम्बुजम् के विवाह के दिन, रात को मैंने जो सौन्दर्य पूर्णचन्द्र मे देखा, वह उसके पहले कभी भी नही। शहनाई का मधुर स्वर उसके पहले मुझे उस तरह मुग्ध नही कर सका। चन्दन की सुवास और चमेली की सौरभ ने उसके पहले मुझे कभी उतना आनन्द नही दिया।

'मेरे मन मे वे सब आशाएँ उत्पन्न हुई, जो उसके पहले कभी नही उगी थी। मै सोचने लगी—और सब लड़कियों की तरह मै भी बाल सँवारकर फूल क्यो नही रख सकती? सिंदूर से माँग क्यो नही भर सकती? चन्दन क्यो नही लगा सकती?

'शादी के तीसरे दिन दोपहर को, मैं अंबुजम् के साथ जनवासे गई। अंबुजम् की ननद उसके बाल सँवार रही थी। उसके पास अब कौन-कौन-से गहने हैं, अब और कौन-कौन-से बनवाकर पहनानेवाले हैं—ऐसी अमूल्य बातो के बारे मे वह पूछताछ कर रही थी। मेरा ध्यान उस ओर नही था। 'हॉल' मे कोई बातचीत कर रहे थे और बीच-बीच मे कुछ शब्द सुन पड़ते थे। मुझे प्रतीत हुआ कि यह उन्ही की आवाज़ है। मै कान देकर ध्यान से सुनने लगी। उस आवाज़ मे कैसा माधुर्य, कैसा अपनापन भरा था? बचपन मे विधवा होनेवाली स्त्रियो की हालत के बारे मे ही वह बातें कर रहे थे। वैधव्य की कठोरताओं के बारे मे कितने ही महान व्यक्तियो की सूक्तियाँ वे उद्धृत करते गये और पुस्तकों के नामो का भी उल्लेख किया। उन उद्धरणों मे से, 'श्री माधवय्या की

लिखी हुई मुत्तु मीनाक्षी शीर्षक कहानी पढ़िये', यह वचन तो मुझे अब तक याद है।

'एक ने कहा--ठीक बोलते हो जी ; बातें बघारने में तो तुम पूरे उस्ताद हो ! तब अन्नपूर्णा के साथ ब्याह ही क्यों नहीं कर लेते ?

'उन्होंने जवाब दिया—छि:-छि: ! तुम लोग बिल्कुल मूर्ख हो। तुमसे बातचीत करने की अपेक्षा टूटी दीवार से बोलना बेहतर है। झट किसी के कमरे से बाहर जाने की आहट सुनाई दी।

'इतने में उनके बारे में सभी बातें मैं समधियाने की बातचीतों से समझ गई। उस साल वे सारे मद्रास प्रान्त में बी० ए० के इम्तिहान में अव्वल आये थे। पाँच हज़ार रुपए के दहेज के साथ लोग उनको बेटी देने आ रहे थे। ऐसे पुरुष के प्रेम की मैं पात्र बनी ? अपने भाग्य पर मैं विश्वास न कर सकी।

(३)

'शादी के चौथे दिन सवेरे ख़बर आई कि समधिन की तबियत ठीक नहीं है। उनको देखने मैं जनवासे गई। मैं सोचती जा रही थी कि वे शायद वहीं होंगे। देहली लाँघकर जब मैं दालान में गई तब वहाँ वे अकेले टहल रहे थे और मुझे देखकर पूछा—किसको ढूँढ रही हैं ? मैं कुछ जवाब न देकर सकपकाई-सी खड़ी रही . उन्होंने झट मेरे हाथ में एक ख़त रखकर उसे मेरी ही उँगलियों से ढक दिया, ताकि वह बाहर किसी को न दीख पड़े। फिर तुरन्त वे बाहर चल दिये।

'मेरा शरीर यों काँप उठा, जैसे बवडर में पत्तियाँ। लेकिन मन की दृढ़ता के साथ मैंने वह पत्र हिफ़ाज़त से अपने सीने में छिपा लिया और भीतर चली गई। समधिन से बातें करते वक्त मेरी अक्ल अपने ठिकाने नहीं थी। समधिन ने पूछा—पूछती हो, मेरी तबियत कैसी है ? तुमको क्या हो गया है, बेटी ? आँख और मुँह के लक्षण अच्छे नहीं दीखते ? 'हाँ, मेरा भी सिर दर्द कर रहा है,'—कहकर मैं सीधे घर लौटी। आते ही भीतर के कमरे में चटाई बिछाकर लेट गई। पूछनेवालों से 'तबियत

ठीक नही है,' कहकर मै सिसक-सिसककर रोती रही। उसके बाद मुझे उनके दर्शन ही नही हुए...'

'क्यों जीजी ? बात क्या हुई ? उस चिट्ठी मे आख़िर वैसा क्या लिखा था ?'

'चिट्ठी मे ? मुझ पर उनका जितना प्रेम था सब उन्होंने उसमे उँड़ेल दिया था। उन्होने लिखा था कि मेरे लिए कोई भी त्याग करने और दुनिया-भर का सामना करने के लिए वे तैयार थे। लेकिन फिर भी मुझे मजबूर या दुःखित करने की उनकी इच्छा नही थी। उन्होने यह भी लिखा था कि, अगर मुझे भी उन पर प्रेम हो और समाज की खिल्लियों का सामना करने का साहस भी हो तो उस दिन शाम को हरिद्रा-लेपन या जुलूस के वक्त मै अपने हाथ मे एक चमेली का फूल रखकर खड़ी रहूँ और उस संकेत को देखकर, वे अपना इन्तिज़ाम करेंगे...'

'तो उस समय आप रो क्या रही थी, जीजी ? क्या उनके कहे मुताबिक आपने नही किया ?'

'नही किया। उल्टे मै भीतर जाकर लेटी रो रही थी, जिससे उन्होंने समझ लिया होगा कि मै उन्हे प्यार नही करती और मेरे मन को उन्होंने दुखाया है। इस तरह मेरे जीवन का वह चार दिन का मीठा स्वप्न समाप्त हो गया...।'

'हाँ, जीजी ! तो आपने उनके कहे अनुसार क्यो नही किया ? मेरी समझ में ही न आया कि मामला क्या है ?'

'उस कारण को बताने मे भी अब मुझे लाज आती है। उनका वह ख़त मैने उसी दिन नही पढा ; एक साल के बाद मैंने उसे पढ़ा। इस प्रकार पढ़ने के पहले मैं कितने ही दिन उसे अपने हाथों में रखकर आँसू बहाया करती थी। जब मै उसे पढ़ने लगी, उसमे से आधे अक्षर आँसुओ से लुप्त हो गये थे...'

'जीजी, यह आप क्या कह रही हैं ? तब आपको...'

'हाँ, सावित्री ! उस दिन मुझे अपमान और मन की व्यथा का जो

अनुभव हुआ, उसीने मुझे पढने के लिए प्रोत्साहित किया और वही मेरे बी० ए०, एल० टी० की पदवी लेने और इतनी सेवा करने का कारण बना। उन्होंने जब मेरा हाथ छूकर अपना व्रत दिया था, उस दिन मुझे पढना नही आता था।'

सावित्री की आँखों से छलछलाती हुई आँसू की बूँदे, रजत चन्द्रिका के प्रकाश मे मोतियो की तरह झलकने लगी।

और वह शहनाईवाला केदारगोड़ राग ही गा रहा था या विश्व के महाकाव्यों मे भरे हुए सारे करुणरस को निचोड़कर शहनाई की नली के द्वारा बहा रहा था?

प्रेम ही मृत्यु है : : कु० प० राजगोपालन्

[श्री कु० प० राजगोपालन् का जन्म १९०२ ई० मे हुआ था। आप अँग्रेजी के बी० ए० हैं और आपने बँगला भाषा और साहित्य का भी अच्छा अध्ययन किया है।

आधुनिक तमिल कहानी को पूर्ण रूप देनेवाले आप प्रथम गल्पकार हैं। आपकी सौन्दर्यानुभूति और सूक्ष्म भाव-व्यंजना सुन्दर हैं। प्रेम को आपने अलग-अलग दृष्टिकोणों से अच्छी तरह प्रदर्शित किया है। न केवल आप अच्छे कहानी लेखक हैं, वरन् आप एक सफल समालोचक भी हैं और एक-दो समालोचनात्मक पुस्तकें भी आपकी निकल चुकी हैं।

'प्रेम ही मृत्यु है' को रचना मे एक विशेषता है। इस कहानी मे एक स्त्री के मुख मे ही उसका अपने हृदय का अध्ययन कराया गया है। यह बहुत सच्चा है और सफल है। पाश्चात्य मनोवैज्ञानिकों का कहना है कि स्त्री एक समस्या है हमारे पूर्वजों ने भी कहा है—स्त्रीणा च चित्तं—देवो न जानाति कुतो मनुष्यः? उसी स्त्री-हृदय का एक सफल चित्र लेखक ने अपनी इस कहानी में उपस्थित किया है। एक भोलीभाली नारी और सन्देहशील पति के साहचर्य से एक असाधारण घटना कैसे घटती है, प्रस्तुत कहानी मे यह देखने लायक है।—सं०]

एक प्रकार का भावना-प्रवाह, असाधारण अवसर पाकर, पचेन्द्रियों को कैसे तितर-बितर कर सकता है, प्राणी की सुध-बुध कैसे गुम कर देता है और चलनेवाले शरीर को कैसे मुर्दा-सा बना डालता है, इसका प्रत्यक्ष उदाहरण मेरी सहेली रुक्मिणी है। वह बहुत पढ़ी-लिखी न थी। गँवार लड़की थी। हिन्दू स्त्री-धर्म के अनुसार 'लौंडी' होकर अपना जीवन बिता रही थी।...तीन साल हो गये। उस दिन से उसको चित्त-विभ्रम-सा हो गया है। उसके रोग ने वैद्यों को चकित कर दिया है। वह न तो 'हिस्टीरिया' कहलानेवाला श्वासरोग है और न उन्माद ही। आँखें निर्जीव-सी, एक ही ओर देखती हुई पथराई-सी रह जाती हैं। वह हमेशा भाव-हीन आकृति-सी दीखती है। यह तो उसकी साधारण हालत है। एक

दिन अपनी जगह पर बैठी-बैठी वह चिल्ला उठी—अरी, तुम कहती थी कि माधो कही भेज दिया गया है! उधर वही तो जा रहा है? उसके भ्रम को मिटाना दूभर हो गया। एक दिन वह मेरा आलिगन कर अकारण ही सिसक-सिसककर रोने लगी। एक और दिन, 'अरी, माधो तो जीवित है। तब मै माँग क्यो नही भर सकती?'—कहकर, उसने कुकुम लगा लिया। पाँच मिनट बाद, वह आइने मे अपना मुँह देख आई और 'हाय-हाय! उनके मर जाने पर भी...क्यो मेरी मति ऐसी भ्रष्ट हो गई।'—कहकर कुकुम को मिटा दिया।

× × ×

मेरी बदली तजाऊर हुई। कुम्भकोणम् मे मुक़ाम करके लौटी ही थी कि तीसरे दिन मेरी सहेली रुक्मिणी का पत्र मिला—

४-४—'३४.

'मेरी प्रिय कमलम्

इतने वर्षों के बाद भी तुम मेरी याद रखती हो और मेरा पता लगाकर यहाँ चली आई, यह देखकर मुझे बड़ा आनन्द हुआ। मुझे तो ऐसा लगता है कि मैंने कोई ऐसी नई चीज़ देखी है जिसे इसके पहले कभी नहीं देखी थी। कमलम्, आठ साल पहले मै और तुम नाचती-कूदती मदरसे जा रही थी, घटना आज की जैसी है। तुम तो पढ़कर स्कूलों की 'इन्सपेक्ट्रेस' हो गई। मैं बेसमझ, कूपमडूक की तरह एक कोने मे दिन बिता रही थी। लेकिन, सुनो कमलम्, मुझे नचाने के लिए यहाँ भी एक चीज आ धमकी। तुमसे कहने मे क्या है? तुमसे न कहूँगी तो और किससे कहूँगी? कल का प्रभात। मेरे स्वामी घर पर नही थे। किसी 'केस' के लिए बाहर गाँव गये थे। घर का काम-काज पूरा कर, मैं कावेरी जाने के लिए द्वार पर गई। चौखट पर पैर रखा ही था कि वह सड़क पर आता दीखा;—कौन था, जानती हो? मेरे ब्याह के दिन घर से जो भाग गया था—माधो—तुम्हे याद है? उसने मुझे शायद देखा भी न होगा। मेरे हाथ-पाँव काँपने लगे—पैर फिसल-

कर मैं गिर पड़ने को हुई, पर अपने-आप को सँभाल लिया। इसी हलचल में उसने मुझे देख लिया। एक क्षण—वह तेज़ी से पाँच-छः फुट दूर तक चला गया। क्या जाने, कमलम्, मालूम होता है, वह मेरे दुर्भाग्य की घड़ी थी—मैं भूल गई कि मैं ब्याही हुई लड़की हूँ। मुझे याद नहीं कि मैंने क्या कहा। मैं अपने होश-हवास में नहीं थी। ऐसा प्रतीत होता है कि मैंने 'माधो' पुकारा होगा। चलनेवाला लौटकर मेरे पास फुर्ती से आया और पुकारा—रुक्मिणी! तभी मुझे अपनी चेतना हुई। मैंने उसके चेहरे को देखा। उसकी दृष्टि से मुझे डर लग रहा था। सारा शरीर थर-थर काँप उठा। भागती हुई आँगन में चली आई। कमलम्, वास्तव में मैं सोचने लगी कि, उसे क्यों बुलाया। मैं सच कहती हूँ, मैंने यह काम अपनी बुद्धि से नहीं किया। क्या करूँ, री?

'रुक्मिणी, मुझे चीन्हती हो?'—उसने पूछा। उसका वैरागी-भेष मुझसे देखा नहीं गया। 'ऐसा क्यों पूछते हो, माधो!'—मैंने कहा। अनजान में ही मेरी आँखों से आँसू बह आये। देखो कमलम्, हम कुछ भी क्यों न करें, अभ्यास छूटता नहीं है। बचपन में एक साथ, खेलने का प्रेम जो है! मैंने लाख कोशिश की कि उस पराये पुरुष से दूर खड़ी होकर बातें करनी चाहिये लेकिन मुझमें ऐसा न हो सका। क्या यह मेरा कसूर है? मेरे मन की घबराहट को उसने स्पष्ट, दर्पण में जैसे, देख लिया। धीरज के साथ मेरा ही मुख देखता रहा। मूक, मौन खड़ा था। मुझे न सूझा कि क्या कहना चाहिये। 'मेरे स्वामी घर पर नहीं हैं।'—मैंने कहा। मेरा कथन अर्थहीन था। मैंने ध्यान दिया कि उसके चेहरे पर घृणा का भाव है। मैं बोली—दोपहर को आ जायँगे। वह चुपचाप चबूतरे पर बैठ गया। कुछ देर के बाद पूछा—हमारे मिलन से तुमको आनन्द हुआ है कि नहीं? न जाने उसके इस प्रश्न का मतलब क्या था? मैंने जवाब नहीं दिया। उसने फिर कहा—मेरे प्रश्न का उत्तर दो।

'नहीं'—मैंने अपने मन की बात कह दी। बस, बैठा हुआ आदमी

वहाँ से सीधा सड़क पर हो चला गया। मै उसके पीछे चीखी-चिल्लाई; लेकिन उसने ध्यान नही दिया। क्या करूँ? वास्तविक बात तुमसे कहती हूँ। तुम चाहे कुछ भी समझो। उस क्षण से मैं विकल हो गई। दस साल से जो वैरागी-सा इधर-उधर घूमता फिरता था, उससे भेंट होने के दूसरे ही क्षण मैंने खोटी बात सुनाकर उसे भगा दिया! क्या वह फिर लौट आयगा? मै क्या करूँ, कोई रास्ता बता दो?"

तुम्हारी—रुक्मिणी'

रुक्मिणी और मैं जब एक साथ मदरसे मे पढती थी, तब माधो भी वहीं था। मुझे याद है, वह बड़ा अच्छा लड़का था। अफवाह थी कि उसी के साथ रुक्मिणी का विवाह होनेवाला है। हम सब लडकियाँ रुक्मिणी की हँसी उडाया करती थी। वह रुक्मिणी के पिता का भानजा था। उसके माता-पिता उसे बचपन मे ही छोड़कर चल बसे थे। मामा के ही घर मे उसका पालन-पोषण हुआ था। विवाह के वक्त रुक्मिणी की उम्र चौबीस वर्ष की थी। वह उससे तीन साल बडा था। कॉलेज मे पढ रहा था। न जाने किस कारण से यह निश्चित हो गया कि रुक्मिणी का ब्याह माधो से नहीं होगा। लोग कहते थे कि इसका कारण उसकी माता ही थी। उसी के रिश्ते मे एक लड़का वकालत पढ रहा था, उसी के साथ विवाह होना तय हुआ। रुक्मिणी ब्याह के रोज़, दिन-भर रोती ही रही। माधो उसी दिन घर से भाग गया। वह कहाँ गया, किसी को पता नहीं। हिन्दू-धर्म की प्रथा के अनुसार रुक्मिणी ने अपने पति को ही ईश्वर मान लिया। बस, अपने को उसकी लौंड़ी समझकर तन तोडकर परिश्रम करती थी। उसके पति की बात, कुछ न पूछिये। अपनी पत्नी भी एक स्त्री है, उसके भी मन, हृदय कुछ हैं—इस बात को शायद वह भूल गया था, या उसने इसकी परवाह ही न की। मै भी स्त्री हूँ, इसलिए बिना कहे मुझसे रहा नहीं जाता। कुम्भकोणम् मे रुक्मिणी से मैं मिली थी। बाप रे! क्या कहूँ, उसकी

वह हालत मुझे बिल्कुल बुरी लगी। न जाने वह कैसे अपने दिन बिताती है। सचमुच वह देवी है।

दूसरे दिन एक और ख़त मिला—

'कुम्भकोणम्,
५–४–'३४,

'कमलम्,

तुम शायद सोचती होगी कि यह कैसा आश्चर्य है। लेकिन तुमसे न कहूँ तो मेरा दिल नही मानता। कावेरी को जाते वक़्त रास्ते मे ही 'लेटरबॉक्स' है। अच्छा हुआ कि, मेरे गीतो की नोट-बुक मे दो तीन लिफाफे थे। लेकिन मेरे लिखने से तुम्हे अड़चन तो नही हो रही है? नही न? मूर्ख-सी लिखती जाती हूँ। मेरे पत्र किसी को नही दिखाना। अपने पति-देव को भी नहीं। कल से मै पागल-सी हो गई हूँ। हालत इतनी नाज़ुक हो गई कि कल मेरे पति भी मुझ पर झल्ला उठे—तुम्हें क्या हो गया है?

जब वह छोटा लड़का था, तब बिना मेरे बुलाये कभी खाने नहीं आता था। जो कुछ भी उसे मिलता, लाकर मुझे देता। मेरी माँ मुझे धमकाती—लड़को से खेलने पर कान कट जायगी। लेकिन उससे छिप-कर हम दोनो खेला करते थे। विवाह के दिन मैंने उसे पहली बार दुत्कारा—लेकिन चुपचाप, बिना कुछ बोले ही। कल दूसरी बार—उसे, जो मुझे ढूँढ़ता हुआ चला आया था, ख़ूब खरी-खोटी सुनाकर दुत्कारा। कैसी पापिन हूँ!

लेकिन अब समय भी तो भिन्न है; वह समय नही है न? मै पराये की चीज़ हो गई हूँ। उनको मालूम हुए बिना मै माधो को आने के लिए कैसे कहती? यह तो निश्चित ही है कि वे उसे देखना भी पसन्द न करेंगे। मुझ पर सन्देह करेंगे और पीटेंगे भी। हाँ, सखी! कितनी ही छोटी-छोटी बातों के लिए मुझे मार-पीट सहनी पड़ती है। एक बार की घटना है। 'भवति भिक्षा देहि'—कहता हुआ एक लडका आया था।

भोजन खिलाते वक्त मैंने उससे इतना ही पूछा था—तुम्हारा गाँव कौन-सा है ? मैं आसमान को साक्षी करके कहती हूँ, मेरे मन में किसी भी तरह का कल्मष नहीं था। मैंने सीधे-सादे तौर पर ही यह प्रश्न किया था। लेकिन इसी बात पर वे क्रुद्ध हो गये और मुझे खूब पीटा। पगली की तरह ये सब बातें लिख रही हूँ। पतिदेव के बारे में ऐसा लिखना ठीक नहीं है ? अब तक मैंने कुछ नहीं कहा था। ब्याही जाने के बाद, मुँह कैसे खोलती ? मन से भी अगर कोई अपराध हो जाय तो वह पाप ही होगा न ? मेरी नानी कहा करती थी—पति का एक हाथ मारने के लिए होता है और एक आलिंगन के लिए। लेकिन मैं क्या जानूँ, दुनिया में कैसे होता है ? मैंने तो मारनेवाला हाथ ही देखा है। ऐसी बातें लिखना दोष है, लेकिन यह कैसा मेरा विनाश-काल है ?

तुम्हारी—रुक्मिणी'

इस खत को पढने के बाद मेरी सहानुभूति और भी बढी। रुक्मिणी-जैसी भोली-भाली बाला इस युग में कहीं मिल सकती है ? बेचारी, कैसे कैसे कष्ट भोग रही होगी ? नन्ही बच्ची की तरह लिख रही है !

दूसरे दिन फिर एक चिट्ठी आई—

'कुम्भकोणम्,
६–४–'३४,

'कमलम्,

मैं क्या करूँ ? आज शाम को फिर उससे भेंट हो गई। मैं पानी भरने गई थी। घाट पर भीड़ होगी, यही सोचकर मैं कुछ देर से गई। चाँदनी छिटकने का समय हो आया। मैं जल्दी-जल्दी पानी भरकर चली आई। मुझे डर लग रहा था कि मैं अकेली हूँ। एकाएक 'रुक्मिणी !' की आवाज़ कानों में पड़ी। मन में तो यह भाव उठा कि अच्छा हुआ, माधो आ गया लेकिन साथ ही यह विचार भी हुआ कि अकेली किसी

पराये पुरुष से नदी किनारे बातचीत करूँ, यह अनुचित है। मै पूछना चाहती थी—मुझ पर नाराज तो नही हो ? लेकिन मै बोल उठी—माधो, यह ग़लत है। इस तरह यहाँ बातचीत करना अनुचित है—मेरा अंग-अंग काँपने लगा। कावेरी के तीर पर कोई चिड़िया का पूत भी नहीं था। मैंने सोचा कि उसके हाथों फँस गई हूँ। 'क्यों वैसा सोचा ?'—अब मुझे मालूम नही पड़ता।

माधो दूर खड़ा था। उसने उत्सुकता से पूछा--रुक्मिणी, इतनी देर कर यहाँ क्यो आई ? मुझसे शायद यहाँ मिलने की लालसा से ही न ?

'नही ; यों ही देर हो गई'—मैंने कहा।

उसके मुख पर एक विचित्र परिवर्तन हो रहा था। मै डर गई। बोली—माधो, तुम यहाँ से चले जाओ।

'फिर तुमने मुझे बुलाया ही क्यों ?'—क्रोध के साथ उसने पूछा। उसने तुरन्त अपना क्रोध दबा लिया।

'बिना जाने ही मुझसे यह काम हो गया।'

'नही, रुक्मिणी ! तुम झूठ बोलती हो।'

मेरी समझ मे नही आया कि क्या कहूँ। एक क्षण वैसे ही खड़ी रही। क्षण भर मे घड़े को सँभालती हुई, तेज़ी से आगे बढी।

'रुक्मिणी, मै कल तुम्हारे घर पर आऊँगा।'

'मेरे पीछे मत आओ'—कहकर मै घर आ पहुँची। मुझे लगा कि वह आ जाय तो कितना अच्छा हो। लेकिन मै काँप उठी—हाय ! अब वे आ जायँ तो ? माधो उजड्ड है। उनके घर मे रहते वक्त वह आ जाता, तो मै क्या करती ? मुझे तो कुछ भी नही सूझता।

तुम्हारी—रुक्मिणी'

इस पत्र को पढते ही मुझे ऐसा प्रतीत हुआ कि रुक्मिणी पर कोई आफत आ ही पड़ेगी। ऐसे समयों पर चालाकी से काम लेने की शक्ति

उसमें न थी। उसका पति ईर्ष्यालु और मूर्ख था। माधो भावावेग में अपने को भूल जानेवाला था। तब आपत्ति के बारे में पूछना ही क्या है!

उसी दिन शाम की गाड़ी से चलकर, मैं अपने पतिदेव के साथ कुम्भकोणम् आ पहुँची। करीब साढ़े आठ बजे सवेरे हम रुक्मिणी के घर के सामने जाकर उतरे। घर के द्वार पर बड़ी भीड़ लगी थी। मैं सहम गई। भीड़ को चीरते हुए हम दोनों जल्दी-जल्दी भीतर गये। रुक्मिणी दिग्भ्रान्त होकर एक तरफ बैठी थी। माधो एक ओर स्तम्भित खड़ा था। रुक्मिणी का पति जमीन पर पड़ा था। उसी समय पुलिस के दारोग़ा भी अन्दर चले आये।

'केस' चला। माधो ने अपने वक्तव्य में सारी बातें कह दीं—शाम को रुक्मिणी से मिलने माधो का आना, बातचीत के बीच में उसके पति का आगमन, आगन्तुक पर सन्देह-दृष्टि तथा अपनी पत्नी पर आक्रमण, हत्या को रोकने के लिए उसकी छाती पर माधो का प्रहार और तुरन्त उसकी मृत्यु। रुक्मिणी 'केस' में किसी तरह काम न आई। अदालत में गवाही की पेटी पर चढ़ाते ही वह मूर्छित हो जाया करती थी। आख़िर माधो को काला पानी की सजा हुई।

उस दिन विचलित हुआ था रुक्मिणी का चित्त।

नक्षत्र-शिशु : वी० एस० रामय्या

[श्री वी० एस० रामय्या का जन्म १९०५ ई० में हुआ था। लम्बी कहानियाँ लिखने में आप काफी सिद्धहस्त हैं। तमिल-संसार में ओजपूर्ण भाषा, गतिशील और मर्म को छूती कहानियाँ लिखने के लिए रामय्याजी का काफी आदर-मान है। आप तमिल के गल्प-कला सम्बन्धी एकमात्र पाक्षिक 'मणिक्कोडि' के सम्पादक रह चुके हैं। कला और टेकनिक की दृष्टि से आपकी कहानियाँ काफ़ी ऊँची उठती हैं।

'नक्षत्र-शिशु' यद्यपि आपकी और कहानियों से भिन्न पर आपकी कला का एक उत्कृष्ट उदाहरण है। शिशु के मन में उठनेवाली भावनाओं का यह एक सत्य और सजीव चित्रण है। शिशु मन की अथाह करुणा उसमें व्याप रही है। कहानी काफ़ी ऊँची उठी है।—स०]

'बाबूजी, क्या तारों के भी बाबूजी होते हैं ?'

'हाँ, बच्ची !'

'उनका नाम क्या है, बाबूजी ?'

'ठाकुरजी।'

'ठाकुरजी ? वे भी आपके-जैसे ही होंगे, बाबूजी ? तारे बहुत सुदर हैं ; उनके बाबूजी भी बड़े ही सुन्दर होंगे न ?'

'हाँ, री बच्ची ! ठाकुरजी के समान सुन्दर व्यक्ति दुनिया भर में कोई नहीं है।'

'ठाकुरजी भी आपकी ही तरह अच्छे आदमी होंगे ? है न ?'

'हाँ।'

'हाँ, हाँ, मुझे भी मालूम है ! ठाकुरजी बड़े...बड़े भले आदमी हैं। तारे कैसे सुन्दर जगमगा रहे हैं। क्यों बाबूजी, उनके बाबूजी कैसे होंगे ?'

'वे बहुत भले आदमी हैं। हम सबसे बड़े हैं।'

'तारे कब उगते हैं, बाबूजी ?'

'शाम को।'

'वे कैसे पैदा होते हैं ?'

'हम सच ही बोलें तो, हम जब-जब एक सच बात कहते हैं, तब-तब एक तारे का जन्म होता है।'

'मैं भी सच ही कहूँ तो तारे पैदा होंगे। यही न, बाबूजी ?'

'हाँ, बच्ची। जितनी ही बार तुम सच कहती जाओगी, उतनी ही बार एक-एक तारा पैदा होता जायगा।'

'बाबूजी !'

'क्या है, बेटी !'

'अपने गाँव मे जित्ते लोग हैं—जित्ते बच्चे हैं—सभी सच बोलेंगे तो कित्ते तारे उगेंगे ? इत्ते (दोनो हाथों को फैलाकर) तारे पैदा हो जायँगे कि नही ?'

'हाँ बच्ची।'

यह सुनकर बच्ची रोहिणी कुछ न बोली, वह गम्भीर चिन्तन में डूब गई। उसके अपरिपक्व मन मे ठाकुरजी, उनके नक्षत्र-शिशुओं के सौंदर्य और मानव-मात्र के सत्यव्रत के बारे में कल्पना की तरंगे उठने लगीं और वह इन सब चीज़ों की जाँच करने के लिए घर के बाहर चली आई।

× × ×

बालिका रोहिणी अभी छः ही साल की है लेकिन उसका एक-एक वचन एक-एक रत्न है। उसकी बोली मोतियों और मूँगों का हार है। उसके सभी प्रश्न दैवी लोक के प्रश्न हैं। उसके शिशु-मन में स्वर्गलोक के विचार उठते हैं।

श्रीमान् सोमसुन्दरम् बी० ए० के पदवीधर हैं; लेकिन फिर भी वे बाज़ वक्त रोहिणी के सवालों का जवाब नहीं दे सकते थे। उनके दिल मे एक कसक हुआ करती—हाय ! इस बच्चे के मन को भी मैं शान्त नही कर सका हूँ। लेकिन रोहिणी को देखते ही—रोहिणी के बारे में

सोचते ही—उनको वह गर्व होता, जो किसी बादशाह को भी नहीं हो सकता था।

× × ×

साँझ हो आई। बाला रोहिणी तभी नहाकर अपनी मा के किये हुए साज-शृङ्गार के साथ बाहर आई। घर के द्वार पर दोनों ओर बादाम के दो पेड़ थे। उन्हीं के बीच वह खड़ी हो गई। सूर्यास्त हो रहा था, आकाश-वीथी में शून्य और प्रकाश मौन-मुग्ध होकर हँस रहे थे। बालिका रोहिणी पश्चिम में होनेवाले इस इन्द्रजाल को देख रही थी। उसके निष्कलंक मन में समाधि की अवस्था जागृत हुई।

'कौन है वह? आकाश में वैसे चित्र लिखकर खेलनेवाली वह आकाश-लोक की रोहिणी कैसी होती है?'

बच्ची रोहिणी पाटिये पर चित्र लिखकर खेला करती थी। पहले एक चित्र खींचती। 'छिः, यह अच्छा नहीं है' कहकर उसे मिटाकर फिर दूसरा चित्र लिखती। वह अच्छा ही रहता लेकिन उसे भी मिटाकर फिर एक तस्वीर बनाती उसे भी पोंछकर एक नई तरह का चित्र खींचती।

आकाश की रोहिणी भी उसी तरह नये-नये चित्र खींच रही है लेकिन वह मिटा-मिटाकर नहीं लिखती, चित्रों को बदलती रहती है। सभी रंगीन चित्र हैं! नये-नये रंग के! क्षण-क्षण में नव-नव आनंद देनेवाले! एक की तरह का दूसरा नहीं! उस आकाशलोक की रोहिणी को कितना आनंद होगा! बालिका रोहिणी भी आनन्दित ही थी, आकाश की रोहिणी के आनंद के बारे में सोचती हुई।

× × ×

"मा, ठाकुरजी का एक नक्षत्र-शिशु पैदा हो गया!"—रोहिणी चिल्लाई और ताली बजाने लगी। उसकी आँखें हँस रही थीं दिल खुशी से पागल हो रहा था।

रोहिणी की मा देहली पर खड़ी थी। उसका ध्यान सड़क पर

जाने-आनेवालों पर लगा हुआ था। सड़क पर जानेवाली किसी लड़की की पोशाक के बारे में वह सोच रही थी। बालिका रोहिणी की बात उसके कानों में नहीं पड़ी। लेकिन बालिका के आनंद ने उसके मन को बरबस ही उसकी ओर आकर्षित कर दिया। निस्सीम प्रेम से मा की आँखें बच्ची को यों देख रही थीं मानों उसे वैसे ही निगल लेना चाहती हो।

आकाश-प्रदेश में अँधेरा छा गया। अंधकार भी कितना सुन्दर है! उसमें भी कैसी माधुरी है। माता के स्निग्ध प्रेम-जैसी माधुरी! एक के बाद एक, तारे उगते ही गये। बाप रे! कितने तारे हैं! बालिका रोहिणी उनको गिन न सकी। कितनी शीघ्रता से वे पैदा हो रहे थे! बच्ची का छोटा मन उस शीघ्रता के पीछे चल नहीं सका।

'चलो, बिटिया! भीतर चलो। अँधेरा हो गया है।'—मा ने बेटी को पुकारा।

'जरा देर ठहरो, मा। आसमान को देखो, कितना सुन्दर है!'—बच्ची ने मा को वहाँ खड़ी हो जाने को कहा।

'हाँ, हाँ, बहुत सुन्दर है मगर अँधेरा हो गया है न? अब यहाँ क्यों अकेली खड़ी रहोगी? चलो, अंदर आओ।'—मा ने फिर पुकारा।

'मा!'

'हूँ!'

'आसमान अब कैसा है, कहूँ?'

'कहो तो।'

'ठीक तुम्हारे चेहरे की तरह—तुम मुझे चूमती हो न? तब मेरा मुख आसमान जैसा ही रहता है।'

मा उसका मतलब समझ न सकी। उसे यह ठीक नहीं लगा। लेकिन उस कथन में एक ऐसी चीज थी, जिससे उसको यकीन हो रहा था कि 'वह सच है।'

मा झट देहली से नीचे उतर पड़ी और बालिका को घसीटकर

छाती से लगा लिया और असीम प्रेम से उसका मुँह चूम लिया। फिर एक बार, 'भीतर चलो, बिट्टी'—कहकर, वह घर में चली गई।

बाहर गये हुए सोमसुन्दरम् घर लौट आये। देखा कि द्वार पर रोहिणी अकेली खड़ी-खड़ी आकाश के सौंदर्य पर लट्टू हो गई है।

'लल्ली रोहिणी, क्या देखती है, री! चलो भीतर।'—उन्होंने बुलाया।

लल्ली ने कहा—ठहरो, बाबूजी! वह आसमान कैसा सुन्दर है! इतने बाल-बच्चेवाले ठाकुरजी को कितना आनंद होगा, बाबूजी!

सोमसुन्दरम् किसी और ही झमेले की सोच में पड़े थे। वे बच्ची की बातें सुनी-अनसुनी करके, 'ऊँह' कहते हुए घर में चले गये।

दूसरे ही निमेष में एक तारा अपनी जगह से हटकर, झलमलाता हुआ, आसमान से नीचे गिरा और आँखों से ओझल हो गया। उसका प्रकाश कुछ ही क्षणों तक दिखाई दिया।

बालिका की आँखों से आँसू झरझर झरने लगे। दोनों आँखों में पानी के दो बड़े-बड़े मोती ढुलक पड़े। उस छोटे-से, नन्हें-से, हृदय में एक अवर्णनीय—दहला देनेवाली—व्यथा हो रही थी। बालिका सिसक-सिसककर रोने लगी। रोने के बीच-बीच में, लोहे को भी पिघलानेवाले स्वर में, 'बाबूजी, बाबूजी' पुकारती हुई वह घर में गई।

उसी समय, सोमसुन्दरम् आरामकुर्सी पर लेटे हुए, पास की मेज़ में से पढ़ने के लिए एक किताब हाथ में उठा रहे थे। बच्ची की आवाज़ सुनकर उनके हाथ से किताब धड़ाम से ज़मीन पर गिर पड़ी। उनका हृदय मानो सहस्रधार होकर टूट-फूट गया। सारे अंग ढीले पड़ गये।

'क्यों रे बेटा, रानी मेरी, क्या हुआ री मुन्नी? तुम्हें किसने क्या किया?'—इस तरह पूछते हुए, उन्होंने बच्ची को उठाकर अपने कंधे पर सुला लिया।

'बाबूजी! मुझे मालूम हो गया!'—बालिका सिसकियों के बीच बोल उठी।

.या मालूम हो गया, बेटी ?'

'बाबूजी, हमारे गाँव मे किसी ने एक झूठ कह डाला है, बाबूजी !'

सिसकियाँ, सिसकियाँ और 'हूँ' कार के साथ रुदन ।

'तुम्हें क्यों वैसा जान पडता है, मुन्नी ?'

'तुम्हीं ने तो कहा था, बाबूजी, कि ..हम एक सच कहेंगे तो एक तारा पैदा होगा । तब इसका मतलब...यही न है कि...एक तारा तब गिरेगा...जब कोई झूठ बोले ?...ठाकुरजी का मन.. अब.. कैसा.. होगा, बाबूजी ? ..जब मुझे ही...इतना रोना . आता है...' कहकर, वह भोली-भाली बालिका रोने लगी ।

उस हरे-हरे मन मे जो दु.ख, जो पीड़ा हुई थी, उसका वर्णन करना असभव है। वह ऐसा एक पुनीत दुःख था, जिसको एक हृदय दूसरे हृदय को अपनी खुद की भाषा मे ही समझा सकता था ।

कलाकार का त्याग : : जगन्नाथ अय्यर 'ज्योति'

[श्री जगन्नाथ अय्यर 'ज्योति' का जन्म १९०६ ई० मे हुआ था। आप तमिल की सर्वश्रेष्ठ साहित्यिक पत्रिका 'कलैमहल' के सम्पादक और तमिल के रिसर्च स्कालर है। महामहोपाध्याय स्वामिनाथ अय्यर को आपने प्राचीन ग्रन्थों के संशोधन एवं सम्पादन में अमूल्य सहायता दी है और दे रहे हैं। एक सफल कहानी लेखक और सम्पादक के सिवा कवि के रूप में भी आपने काफी ख्याति प्राप्त की है। तमिल के उदीयमान भावुक कवियों मे आपका अच्छा स्थान है। भावनाशील होने के कारण आपकी कहानियाँ भी भावुकता से भरी होती हैं और उनमे अनुभूति भी काफी मात्रा है।

'कलाकार का त्याग' अय्यरजी की नवीनतम रचना है। कला की सफलता और कलाकार के त्याग का मार्मिक चित्रण है। 'कला कला के लिए' और 'कला उपयोग के लिए' का एक सुन्दर निराकरण लेखक ने इसमे दिया है। – सं०]

[१]

नारायण पिल्लै सत्तर साल का बूढा हो चला था। उसके चेहरे पर काल की लकीरें खिची थीं। यौवन का टीला गल गया था, पुष्टि के चिह्न लुप्त हो चले थे और गाल पिचके हुए थे। फिर भी उसके हाथ का वह पुराना कौशल अभी तक पूर्ण रूप से चला नहीं गया था। मिट्टी से अपूर्व रूपों की सृष्टि करने की उसकी कला-शक्ति नष्ट नही हुई। वह तो मानो उसकी उँगलियों के साथ ही जनमी थी।

खाली मिट्टी को गोलमटोल बनाकर सुखाकर, उस पर रग चढा देने से उसमें एक सजीवता—एक छटा—आ जाती थी। यह उसका जादू था। पण्णुरुट्टी मे उसके खिलौनो की माँग ज़्यादा थी।

× × ×

मुरुगन, खिलौनेवाले बूढे का पालित पुत्र था। बूढ़े के एक लड़का भी था। उसका नाम था कृष्ण।

कृष्ण स्वभाव से अच्छा ही लड़का था। अपने वृद्ध पिता के मूल्य और कला-कौशल को वह अच्छी तरह आँकता था। उसी कला को—धन्धे को वह भी सीखने लगा। दर असल कृष्ण कला-कौशल नहीं, व्यवसाय ही सीख सका। उसने भी खिलौने बनाये, बेचे और पैसे पैदा किये। लेकिन उसके खिलौनो मे वह जीवन-ज्योति कहाँ थी ? वे ऐसे प्रतीत होते थे मानो एक ही साँचे मे ढले हुए हो। मिट्टी वही थी और रङ्ग भी वही लेकिन उसके हाथो मे मनुष्य की ही धमनियाँ सञ्चार कर रही थी, कलाकार की नही।

बूढा कभी-कभी अपने बेटे की कमजोरी को—कला-कौशल-हीनता को—सोचकर दुःखित होता था। वृद्ध कलाकार इसी फिक्र मे घुला जाता था—जीविका प्राप्त कर लेने से क्या हुआ ? मिट्टी के खिलौने बनाकर कानी कौडी मे बेचने मात्र से ही इसका काम समाप्त हो जायगा ? इसका जन्म क्या इसी के लिए हुआ है ? खिलौनो का दाम तो खरीदने-वालो का मन है। उनका मन लुभाकर, उन्हे खिलौनो के खरीददार बनाने मे ही तो कलाकार का कर्तव्य निहित है !

कृष्ण तीस साल का हो गया था। अब उसके कलाकार बनने की कल्पना स्वप्न मे भी सम्भव नही थी। बूढा कलाकार इसी सोच-विचार मे पड़ा था कि अब अपनी परम्परा समाप्त हो चली है।

× × ×

मुरुगन ने उस वृद्ध-मन को इस चिन्ता-समुद्र मे डूबने से बचाया और उसमे विश्वास के अंकुर जमाये। वह बछड़े की तरह उछलता-कूदता आया। उसके हाथ की उँगलियाँ, वसन्त के मन्द पवन मे लह-लहाते हुए नव-पल्लवो की भाँति फुरफुरा रही थी। वह वृद्ध का शिष्य बना। 'मजदूरी की जरूरत नहीं। सिर्फ खाना खिलाकर, काम सिखा देना काफी है'—कहकर वह उसकी शरण मे आया। उसके चेहरे पर फुरती झलक रही थी। नारायण पिल्लै ने उसे स्वीकार कर लिया। उस दिन से आज दस साल हो आये, वह बूढे कलाकार के साथ ही

रहता है। दिनोंदिन उनका परस्पर प्रेम बढ रहा है। वृद्ध को विश्वास हुआ कि ईश्वर ने उसकी कला को जगत् मे स्थायी बनाने का एक साधन अचानक ही उसे ला दिया है। मुरुगन बूढ़े को अपना पिता ही समझता था और उसे 'बाबूजी' ही पुकारता था। अब वह उस कुटुम्ब का एक अग हो गया था।

कृष्ण के निष्कलक मन मे किंचित् कालिमा पैदा हुई। वह सोचने लगा—न जाने यह पाजी कहाँ से आया ? पहले तो बोला कि मज़दूरी की भी ज़रूरत नही है, खाने भर को मिल जाने पर काम करूँगा पर अब तो इसने मेरे पिताजी को अपना भी बाबूजी बना लिया है। यह बूढा भी इसको आसमान पर चढाने लगा है। मेरी अपेक्षा इस पर उसका कैसा असीम वात्सल्य है ! इसका परिणाम क्या होगा और यह बात कहाँ तक जायगी, कुछ मालूम नहीं पड़ता। ईर्ष्याग्नि का एक कण उसके हृदय मे उदित हुआ। कला-शक्ति हीन मन की दुर्बलता ने—अपने आपको नीच समझनेवाली भावना ने—उस अग्निकण को सुलगाने मे घी का काम किया।

मुरुगन धन्धा सीखने आया था, पर उसने कला को ही अपना लिया। उसका हाथ बूढ़े के हाथ से भी अधिक वेग के साथ चलने लगा। वृद्ध कलाकार मे कल्पना का एक अक्षय भण्डार था। लेकिन कल्पना को रूप देने मे उसकी उँगलियाँ असमर्थ हो चुकी थी। अवस्था के भार ने पुरानी ऐंठ को ढीला कर दिया था। फिर भी मन की भी कहीं उम्र होती है ? उसकी कल्पना-शक्ति पराकाष्ठा को पहुँच गई थी। अब उसे वह मौका मिला, जिससे उसकी कल्पनाएँ निरे स्वप्न न होकर उज्ज्वल हो उठेगी। नवकुमार मुरुगन ने बूढे के हृदय के साथ अपने हृदय को लगाकर कला का अनुभव किया। उस हृदय मे उद्भूत कल्पनाओं को इन हाथों ने रूप दिया और आँखो के सामने रखा। वृद्ध के कल्पना-बिम्ब मुरुगन के हाथो से यथार्थ मूर्तियो के रूप मे प्रकट होने लगे। बूढ़े ने जो सोचा, मुरुगन ने वही बनाया। उसे यदि बूढ़ा

अपनी जान से चाहता था तो इसमे किसी की क्या गलती थी ? पर, श्रीमान् कृष्ण पिल्ले इन सब बातों को अपनी ईर्ष्याग्नि के धूम से धूसरित आँखों से कैसे देख सकते थे ?

(२)

नौरात आ रही थी। नारायण पिल्लै के खिलौने खूब खप रहे थे। मुरुगन के खिलौने ज्यादा दाम मे बिके। मद्रास से कुल पाँच सौ रुपए का आर्डर आया था। घर के सभी लोग खिलौने बनाने मे व्यस्त थे। बूढ़ा भी खाँसता हुआ अपनी शक्ति-भर खिलौने बनाने लगा। कहने की आवश्यकता नही कि मुरुगन ने भी खिलौने बनाये। यह कहना कठिन है कि कृष्ण ने ज्यादा काम किया। हाँ, उसने काम लिया। उसने बूढ़े को भी घुड़कियाँ दी।

कृष्ण खिलौनो को पेटी मे पैक कराकर स्टेशन ले गया और उन्हें मद्रास भेज दिया। मुरुगन भी उसके साथ स्टेशन तक गया था। मुरुगन के कारण उस दिन कितना मुनाफा मिल रहा है, यह सोचकर कृष्ण का दिल कुछ ठडा हुआ।

उसने मुरुगन से पूछा—भाई, तुम ब्याह नही करोगे ?

उसके मुँह से इतनी मीठी बात की आशा, मुरुगन ने कभी नहीं की थी। मुरुगन को वह अमृत-वर्षा-सी लगी। उसके आनन्द का कारण, विवाह की बात छेडना नही, किन्तु अपने 'दादा' का अपूर्व प्रेमपूर्ण व्यवहार था।

'पिताजी भी अक्सर कहा करते हैं, किसी सुशील कन्या से विवाह कराना चाहिये।'—कृष्ण ने कहा।

मुरुगन के मन्दहास मे लज्जा भी मिल गई।

स्टेशन से दोनो लौटे आ रहे थे। सन्ध्या का समय था। वे बाजार के रास्ते आ रहे थे। एकाएक एक आवाज़ सुनाई दी—मुरुगा! मुरुगा! इतने दिनों तक तुम्हें कहाँ-कहाँ ढूँढता-फिरता था !

दोनो ने मुड़कर देखा—काला सूखा हुआ वदन, चप्पल लिये हुए

हाथ, डबडबाती आँखें—एक मूर्ति सामने खड़ी थी। वह चमार था। जूते बनाना ही उसकी आजीविका थी। पएणुरुट्टी मे वह एक साल से रहता था। कृष्ण को मालूम था कि वह चमार है, पर मुरुगन को मालूम नहीं।

मुरुगन को मालूम नहीं, यह कहना ठीक नहीं। यद्यपि कृष्ण के भाई मुरुगन को वह मालूम नही था, तो भी उसके पहलेवाला मुरुगन उसे खूब जानता था। उसका मन जानता था कि वह तिरुनेल्वेलीवाला है।

दोनो खड़े थे। चमार दौड़ता हुआ आया। मुरुगन का शरीर काँपने लगा। कृष्ण को कुछ भी न सूझा।

'हाय! तुमसे विलग होकर, तुम्हारी मा तुम्हारी ही चिन्ता मे घुल-घुलकर मर गई। तुम अगर मेरे ही साथ रहते तो इस उम्र मे मुझे क्यो इतनी तकलीफ उठानी पड़ती ?'—वह तेलुगु मे विलाप करने लगा। वही उसकी घरेलू भाषा थी।

इस नाटकीय दृश्य का मतलब कृष्ण की समझ मे कुछ नहीं आया, आने पर भी उसको इस पर विश्वास न हुआ। मुरुगन उस चमार का बेटा—?

'क्या बकते हो ?'—कृष्ण ने उससे पूछा।

'हाय! हाय! बाबूजी, यह मेरा बेटा है। इसके लिए मैंने कितने कष्ट भोगे हैं, मै ही जानता हूँ। मुझे मालूम नही था कि यह यहीं पर है।'—कहकर वह रोने लगा। वात्सल्य की धारा बेरोकटोक फूट निकली। आनन्द और प्रेम भी उसी धारा मे मिल गये। उसे क्या मालूम था कि उसके परिणाम-स्वरूप मुरुगन पर विपत्ति का पहाड़ टूट पड़नेवाला है ?

कृष्ण पिशाचग्रस्त-सा हुआ। छाता ही उसका आयुध बना। 'पापी! चाडाल! चमार कुत्ते! मेरे कुल के कुठार! अपने को ऊँची जातवाला कहकर हमे फँसानेवाले द्रोही!'...उसकी ईर्ष्या, जातिगर्व, अपमान आदि भावनाएँ एक साथ मिल गई। मुँह से गालियों की बौछार

होने लगी। मुरुगन को मारते-मारते छाता टूट गया। उसका सारा शरीर लहू-लुहान हो गया। लोगों की भीड़ जमा हो गई।

लोग इस करुण नाटक की आलोचना कर रहे थे। मुरुगन का अधमरा छोड़कर कृष्ण, आवेश से भरा हुआ, घर की ओर दौड़ा। वह इतना आतुर था कि उस बूढ़े को—अपने पिता को—एक दम मार डालना चाहता था। उसी ने तो अपने घर में इस कमीने को आश्रय दिया था? इस पर उसका कितना वात्सल्य था। उसने अपने बेटे की भी परवाह नहीं की। यही चाहिये था उसको? खूब!—ईर्ष्याग्नि की ज्वाला से ऐसे ही विचार उठने लगे। मुरुगन की कला-कुशलता, उससे अपना लाभ—आदि वह सब कुछ भूल गया। उसका विचार था कि मुरुगन के महापाप में बूढ़ा भी शामिल है। 'आगे से बूढ़ा मुरुगन पर फ़िदा न होगा'—यह सोचकर कृष्ण को कुछ सान्त्वना मिली। मानो उसने अपने चिरकालीन शत्रु पर विजय पाई हो।

× × ×

चमार अपने लड़के को झोंपड़ी में ले गया। उसे सब बातें अब स्पष्ट मालूम हो गईं। 'हाय! मैं कैसा पापी हूँ? मैंने अपने बेटे की ज़िन्दगी मिट्टी में मिला दी!' पर रोने-धोने से अब क्या हो सकता था?

× × ×

बूढ़ा मुरुगन और कृष्ण की प्रतीक्षा में चबूतरे पर बैठा था। कृष्ण ने आते ही गर्जन किया—मरो! तुम्हीं ने उस जालिम को आश्रय दिया था! सब मिट्टी में मिल गया! तुमसे इस कुल को कलंक लगा।

'बात क्या हुई?'—बूढ़े ने धीरे से पूछा।

'बात? मैं, तुम और मेरे सब बाल-बच्चे चुल्लू भर पानी में डूब नहीं मरते! चमार का लड़का हमारे घर में घुल-मिल गया!'—कृष्ण सिर पीटकर रोने लगा।

वृद्ध अपने-आप को भूल गया। उसने आँखें मूँद लीं। उसका गला भर आया। चेतना जाती रही।

(३)

कृष्ण धनी था। इसलिए पूजा-दान वगैरह कराकर वह फिर अपनी जाति मे मिल गया। उसके मन मे अब एक ही अन्तिम इच्छा रह गई—जो धन्धा उसने यहाँ सीखा था, उससे वह अवश्य फ़ायदा उठायेगा। या तो उसका हाथ काट लेना चाहिये या उसे उस काम को छोड़ देने के लिए विवश करना चाहिये।

× × ×

बेचारा बूढा निर्जीव-सा हो गया। उसने अपने प्राण-सम मुरुगन को खो दिया। उसका साधारण मन मानता था कि उसने पाप किया है लेकिन उसमें के कलाकार का मन मुरुगन के खो जाने से चिन्तत था।

× × ×

मुरुगन ने कुछ ही दिनों मे अपने बाप का धधा सीख लिया। उसमें वह निपुण भी हो गया।

फिर भी 'बाबूजी' को छोड़कर रहना उसे दूभर था। अब भी वह खिलौने बनाता रहा।

उसका पिता कहता—इन्हें बेच दो। वह कहता—नही, बिना बाबूजी को दिखाये बेचना ठीक नहीं। इन्हें बनाने मे मुझे कितना आनन्द हुआ है!

पुत्र की यह कला-लोलुपता पिता की समझ मे नहीं आई।

× × ×

कृष्ण अपनी जान-पहचान के एक चमार के साथ, मुरुगन की झोंपड़ी के पास आया। आदर के साथ उसका स्वागत करते हुए मुरुगन ने पूछा—दादा, बाबूजी अच्छे हैं?

'बस करो अपना कुशल-प्रश्न! तुमने अब तक जितने खिलौने बनाये हों, सब बाहर निकालो। आगे से तुम जितने बनाओगे, सब के सब मुझे दे देने होंगे। क़सम खाओ।'

मुरुगन को कोई फाँसी पर लटका देता, तब भी उसे उतना दुःख

न होता, रोते-रोते उसने क़सम खाई—मेरे पिता की कसम। मैं जो खिलौने बनाऊँगा, आपको दे दूँगा।

उसने सभी खिलौने कृष्ण को दे दिये, मानो अपना हृदय ही अर्पण कर दिया हो। उसे सिर्फ यही सान्त्वना थी कि खिलौनों को बाबूजी देखेंगे। इससे उसका उत्साह बढ़ा। वह फिर खिलौने बनाने लगा।

× × ×

ईर्ष्या-पिशाच ! क्या तुम्हारे काम ऐसे ही हुआ करते है ?

कृष्ण—डाह का अवतार—उन सब खिलौनों को रास्ते की एक चट्टान पर पटककर फोड़ डालता था। अपना हाथ ऊँचा कर, दाँत पीसता हुआ, वह जब उन खिलौनों को फोड़ता, तब उसके मन मे एक प्रकार की तृप्ति होती।

वह हर हफ्ते अपने आदमी के साथ मुरुगन के यहाँ जाता और उसके खिलौने मँगवाकर रास्ते की उस चट्टान पर फोड़ डालता था।

मुरुगन को क्या मालूम था कि उसकी कला-सृष्टियाँ ईर्ष्या की बलि-वेदी पर चढाई जा रही हैं !

× × ×

मुरुगन की चिन्ता से वृद्ध को जल्दी ही यमराज के दर्शन मिले। मरते वक्त भी वह मुरुगन के बारे मे ही सोच रहा था। उसका अन्तिम शब्द 'मुरुगन' ही था।

उसकी मरण-वार्ता सुनकर मुरुगन की वही दशा हुई, जो मातृहीन वत्स की होती है।

(४)

हममें और कलाकार मे यही अन्तर है। बाबूजी के मर जाने पर भी मुरुगन के हृदय में वह वृद्ध-मूर्ति अचल बनी रही। अपने हृदय-स्थित उस रूप को वह बाह्य-जगत् मे लाता तो कितना अच्छा होता !—इसके विचार-मात्र से उसके सिर से पैर तक एक अमृतधारा बह गई ! मुख पर एक अपूर्व आभा अलोकित हुई।

रात-भर वह नही सोया। वह बाबूजी की मूर्ति बनाने लगा। उसने स्वप्न मे भी उसको देखा। दूसरे दिन फिर बनाना शुरू किया। रत्ती-रत्ती-भर मिट्टी को बहुत ही सावधानी से वह हाथ मे ले रहा था। चार दिनों में मिट्टी की मूर्ति तैयार हो गई। अब उसमे रग चढाने लगा। जूते बेचने से उसे कुछ पैसे मिल गये थे साथ ही उसने कुछ पैसे अपने पिता से भी माँग लिये थे। बढिया रग ख़रीदा गया। मूर्ति के अणु-अणु मे रंग भरा गया।

बस, अब कार्य की समाप्ति हुई। उसने आँख खोलकर देखा। चिल्लाया—अहा! सब तेरे ही अनुग्रह का फल है! उसका मन आनन्द से भर गया। वह पागल की भाँति बकने लगा—मेरी जीत हुई! बाबूजी आज सचमुच ही मेरे बाबूजी हो गये! शाबाश! वाह रे कौशल!

आनन्द के पर्वत से वह एकाएक पाताल मे गिरा—हाय, दादा इसे छीन लेंगे तो—?

'नहीं, इसे छिपा रखूँगा।'

रविवार को नियमानुसार कृष्ण अपने आदमी के साथ आया। आदमी अन्दर से दो मूर्तियाँ ले आया।

'बस, इतनी ही?'

'जी हाँ, इस हफ्ते मे जूते बनाने का काम कुछ ज्यादा था।'

'तो इस काम को ही क्यों नहीं छोड़ देते हो?'

'विचार करूँगा।'

मुरुगन की चौर्य-दृष्टि से कृष्ण को सन्देह हुआ।

'घर-भर मे तलाश करो'—उसने अपने आदमी को हुक्म दिया।

आदमी को काग़ज़ मे लपेटी हुई एक गठरी मिली।

मुरुगन ने अनुनय-विनय की—भाई, तुम्हे बड़ा पुण्य होगा। उसमे कुछ नहीं है। उसे यहीं रख दो।

पर उसका सुननेवाला कौन था? आदमी ने गठरी कृष्ण को दी। कृष्ण चुपचाप वहाँ से चल दिया।

मुरुगन 'हाय !' कहता हुआ जमीन पर मूर्छित हो गिर पड़ा। उसका पिता उसकी शुश्रूषा में लगा।

× × ×

बलि-चट्टान के पास पहुँचते ही कृष्ण ने गठरी खोलकर देखी। अहा! वह स्तम्भित खड़ा रहा गया। न तो उसने अपना हाथ ऊँचा किया, न उसे फोड़ा। उस रूप मे उसने अपने पिता को प्रत्यक्ष देखा। पुरानी स्मृतियाँ एक-एक करके जागृत हुईं। उस मूर्ति को वह कैसे फोड़ता? उसका मन पिघल गया। अब तक उसने कई मूर्तियो को उसी चट्टान पर फोड डाला था। उन मूर्तियो मे भी अपूर्व शिल्प था। लेकिन उनसे उसका हृदय नहीं पिघला उनसे उसकी ईर्ष्याग्नि और भी भभक उठी थी।

लेकिन यह? इसके कलाकार ने अपने प्राणो को वर्ण-रूप मे निचोड़कर इसमे भर दिया है, यह उसकी कल्पना का रूप है, उसने अपने प्रेम को गलाकर उससे इसे गढ दिया है। जिस जीव युक्त शरीर की स्मृति मे यह मूर्ति बनाई गई थी, वह शरीर तो नष्ट हो गया; लेकिन यह नष्ट न होगी।

यही नहीं, यह उसके पिता का जीता-जागता चित्र था। इसके द्वारा उसने अपने पिता को देखा। प्रेम सभी प्रकार की रुकावटो को लाँघकर बाहर वह आया। उसकी आँखो से आँसुओ की बूँदे निकलीं। ईर्ष्या और क्रोध उससे विदा हुए।

आधे घण्टे तक वह निर्निमेष दृष्टि मे उस मूर्ति को देखता रहा। उसके हृदय मे स्मृति की तरगे लहराने लगी। कुछ सोचकर वह फिर लौटा। अकेला झोंपडी के पास चला आया। उसके साथ वह आदमी नहीं था।

'भाई मुरुगा!'—लड़खडाती हुई आवाज कानो मे पडी।

मुरुगन आश्चर्य करता हुआ बाहर आया। दूसरी बार 'भाई' पुकारने पर ही उसे विश्वास हुआ कि कृष्ण ही उसे 'भाई' के नाम से पुकार रहा है।

'भाई, मुझे माफ न करोगे ?'

'यह क्या ? स्वप्न तो नहीं देख रहा हूँ ? कृष्ण की ये बातें हैं ?'— उसने आँखे मलकर देखा।

आँसू बहाता हुआ, हाथ मे सुन्दर मूर्ति लिये, कृष्ण लड़खड़ाते स्वर में कह रहा था- भाई, मै बड़ा पापी हूँ। मुझे माफ करो।

'बात क्या है, दादा ? इसे क्यों लौटा लाये ?'

'यह लो, अपने बाबूजी को तुम्ही लो। बाबूजी के लड़के तुम्ही हो, मै नहीं। मरते दम तक उन्होंने तुम्हे ही याद किया था। तुम्हारे और खिलौनों को मैने फोड़ डाला। अब मुझे मालूम हुआ कि तुम अपने हृदय मे उनकी पूजा कर रहे हो। यह लो, अपने बाबूजी की मूर्ति। मुझे माफ करना। प्रेम के आगे जाति और कुल क्या चीज़ है ? अब मेरी आँखे खुल गई हैं।'

आँसू बहाते हुए, मुरुगन ने वह मूर्ति अपने हाथ मे ले ली।

'दादा, मैंने अपने तन-मन से यह मूर्ति बनाई थी। मेरी आशा पूर्ण हो गई। आगे से, मै क़सम खाता हूँ, यह काम नही करूँगा। जूते बनाना ही अब मेरा काम है।'

उन दोनो की आँखो से आँसुओं के स्रोत उमड़ आये। उन स्रोतों के द्वारा कौन-कौन-से गुण घुलकर निकल रहे थे, इसका विश्लेषण करना क्या संभव है ?

शिल्पी का नरक : : वृद्धाचलन 'नवललोलुप'

[श्री वृद्धाचलम 'नवललोलुप' का जन्म १९०६ ई० में हुआ था। तमिल में नई विचार-धारा के लेखकों में आपका स्थान काफी ऊँचा है। अभूतपूर्व कल्पना, नई शैली, ओजपूर्ण भाषा, स्निग्ध हास्य और वातावरण की विचित्रता आपकी विशेषताएँ हैं। आपके प्राणों में वेदना, विप्लव और क्रान्ति की आग है। आपकी शैली में विप्लव, क्रान्ति की भावना, और मानव-जीवन की असम्बद्ध बिखरी भावनाओं को एक कड़ी में जोड़ने की क्षमता है। आजकल आप 'दिनमणि' के साहित्य विभाग के सम्पादक हैं।

'शिल्पी का नरक' संकेतवाद का उत्तम नमूना है कलाकार के जीवन में कला धर्म का स्थान कैसे ले लेती है, इस भाव को आपने सफलता से चित्रित किया है।—सं०]

(१)

सूर्यास्त का समय था। काविरिप्पूम्पट्टिनम् के बन्दरगाह मे बड़ी चहलपहल थी। काले ठिंगने, मिश्रदेशवासी, गोरे ठिगने कडार-वासी, माथल काले काफिर, श्वेत यवन, दक्षिण के तमिलवाले और उत्तर के प्राकृतवाले—भिन्न-भिन्न तरह के सभी लोगों का वह अनोखा जमघट था। चुङ्गी के अफसर, हंसो और ग्राहों की तरह तैरते हुए जहाजों से उतारी गई चीजों की जाँच करते थे और अपने सुनहरे सोटे के समयोचित प्रयोग से नौकरों को सीधा करते थे। कडार देश से राजा के लिए सफेद हाथी लाये गये थे। उन्हें देखने के लिए ही इतनी भीड़ लगी हुई थी।

अस्तोन्मुख सूर्य का पकाश हमेशा एक शोक-नाटक हुआ करता है। मन्दिर-शिखरों और प्रासाद-कलशों पर पड़कर आँखो को चौंधियाने के अतिरिक्त वह प्रकाश समुद्र-तट के काले प्रस्तर पर खड़े ध्वजस्तम्भ के ऊर्ध्व-भाग मे निर्मित, पूरब की ओर देखते हुए, सोने से मढ़े हुए, कास्यमय व्याघ्र की पीठ और पूँछ पर भी प्रतिबिम्बित होकर लोगों का मन मोह लेता था।

इन्द्रोत्सव के समय लोगो के सुभीते के लिए बने हुए घाट की सीढी पर फैलार्कस नाम का यवन, समुद्र को देखता हुआ बैठा था। उसका लम्बा चोग़ा हवा मे फटफटाता था। कभी-कभी वह उसकी दाढी को गर्दन के साथ जकड़ देता था। बड़ी-बड़ी लहरे मौके-बेमौक़े उसके जूतो को भिगो देती थी। इतना होने पर भी उसके शरीर मे किञ्चिन्मात्र हलचल नही थी। मन अगर किसी चीज़ मे लीन हो जाय तो हवा क्या करती, और तरंगे भी क्या कर सकती हैं ?

फैलार्कस की भावनाएँ कभी-कभी लहरो की तरह सिकुड़कर गिरती थी और तितर-बितर हो जाती थी। स्वप्नों ने उसे पागल बना दिया था।

'शिवा !'—एक आवाज उठी। वह था तमिल प्रान्त का बैरागी।

'यवनवर्य, आपका चित्त अपने प्रिय, रिक्त, शून्य-प्रान्त मे लीन तो नही हो गया ? मैने कल जो कहा था, वह आपके दिल मे बैठ गया कि नही ? सब मूलशक्ति की लीला है, सब उसी के रूप हैं। कॉल्लि-प्रतिमा* भी वही है, कुमारदेव भी वही है। सब एक मे लीन हो जायँ तो.. ?'

'आपके तत्त्व-ज्ञान के मुक़ाबले मे अंगूरी का एक प्याला निहायत मुफीद होगा। अगूर भी साइप्रेस द्वीप का हो . उधर जो -जा रहा है काफ़िर, उसे भी किसी स्वप्न पर अटल विश्वास है। अगर मै आपके पहले सूत्र को मान लूँ तो आपकी पद्धति मे कोई कसर न रहेगी। .. लेकिन उसे मै मानूँ कैसे ? प्रत्येक मनुष्य की मनोभ्रान्ति के अनुसार उसका तत्त्व होता है.. जाने दीजिये इन बातो को.. प्रभात-हाट (Morning Bazar) मे घूमनेवाली आपकी कर्नाटकी सुन्दरी और एक प्याला-भर मधु बस हैं मेरे लिए . '

'शिव ! शिव ! आपसे तो ये जैन-पिशाच ही अच्छे हैं , उन्मत्त

* कॉल्लि-प्रतिमा—केरल प्रान्त की एक अत्यन्त सुन्दर प्रतिमा। कहा जाता है कि, उसकी सुन्दर मुसकान को देखने मात्र से पूर्वकाल में राज-सेनाएँ निश्चेष्ट होकर मर जाती थीं।

कापालिक भी अच्छे हैं.. इस मूढता की गठरी को यूनान से यहाँ लाद लाने की क्या जरूरत थी ? . '

'आप-जैसे लोग जहाँ रहते है, वही मै भी रहूँ, इसी मे सार्थकता है। हमारे जुपिटर की मूर्खता और आपके स्कन्द की मूर्खता—दोनो मे कोई तारतम्य नही है. ' यह कहकर फैलार्कस हँस पड़ा।

'शिव ! आपके प्रेम-पाश मे मै जो फँस गया हूँ ! यह भी उसी की लीला है !'—वैरागी ने अपने सम्पुट से भस्म लेकर ललाट पर टाट-नाट से लगा लिया।

फिर महात्माजी ने पूछा—प्रभात-हाट की तरफ जा रहा हूँ, आप भी चलेंगे ?

'हाँ ! वहाँ जाने पर स्थपति से मेरी भेट हो जायगी। उससे वार्ता-लाप करने मे कुछ अर्थ है वह जानता है सृष्टि का रहस्य. '

'ओ हो ! वही न बुड्ढा जो पत्थर की मूर्तियाँ बनाता है ? आपके लायक पागल वही हैं अरे ! वह खुद इधर आ रहा है, देखिये।'

फैलार्कस ने उठकर यवन-रीति से उसे नमस्कार किया।

शिल्पी की अवस्था अस्सी साल की होगी। बहुत ही वृद्ध था लेकिन उसकी ताक़त कम नही हुई थी आँखो की तीक्ष्णता क्षीण नही हुई थी। वह ऐसा दीखता था, मानो ब्रह्मा ही मनुष्य-रूप लेकर आये हो। उसने भी हाथ जोड़कर नमस्कार किया और एक बच्चे की-सी उमग के साथ चिल्लाया—फैलार्कस, तुम्हे ही ढूँढता चला आ रहा हूँ। मेरे घर चलोगे ? मेरा लक्ष्य आज ही साकार हुआ है !

'इनको तुम जानते हो ! पाण्ड्य देश के, तुम्हारे यहाँ के वैरागी हैं . अपने सभी तत्त्व-ज्ञान को इन्होंने मुझमे ठूँसना चाहा ! . फैलार्कस पर ये चाले कैसे चलेगी ?'—वह दिल्लगी करता हुआ हँसने लगा।

'पधारिये, महाराज ? आज दास की कुटिया मे आपको आतिथ्य ग्रहण करना होगा।'—साष्टाग नमस्कार कर शिल्पी ने कहा।

'यह क्या ! तुम भी ?'—फैलार्कस बोला।

'फैलार्कस, तुम्हारे निरीश्वरवादी होने पर मुझे खेद नही है लेकिन औरो का उपहास मत करो...'

'अरे यार, इसी के लिए तो मैं पैदा हुआ हूँ ; यही तो मेरा काम है..'

'अच्छा, चलो ; महात्माजी, पधारिये ।'

शिल्पी दोनो को बैल गाड़ी मे ले चला । गाड़ी की गति बहुत धीमी ही हो सकती थी । सामने हाथी और भार ढोनेवाले गधे व बैल बन्दरगाह की ओर चले आ रहे थे । लोग दीवट लिये हुए जा रहे थे और उनको पार करते हुए गाड़ी चलाना मुश्किल काम था । अचानक किसी राज्याधिकारी का रथ आ जाता तो रथ और हाथियो से सड़क भर जाती थी । डंका बजाने पर भी कुछ फायदा नही । नमक से भरा छकड़ा चलानेवाली वह लड़की बाल-बाल बच गई । अगर ज़रा इधर हो जाती तो रथ के नीचे दब जाती । शिल्पी की गाड़ी भी उससे टकराती बची ।

'विधाता का विधान !'—शिल्पी ने कहा ।

किसी और बात को सोचता हुआ फैलार्कस बोला—तुम्हारी सृष्टि शक्ति !

'फैलार्कस, तुम्हारी बातों से मेरे गौरव को शान्ति मिल सकती है । कितने दिनों तक मैंने घोर परिश्रम किया था ! तुम्हें मालूम है ? तुम तो कल के बच्चे हो...लास्य !...उसमे कितने अर्थ भरे पड़े हैं ! मनुष्य की ज्ञात, ज्ञेय सब चीज़े...फैलार्कस, यह सारा प्रपञ्च, जैसा कि तुम सोचते हो, खाली शून्य-प्रदेश नही है ; अर्थ-हीन पिशाच-समाज नही है...मै बीस साल का था , तब एक बार पाड्य-देश गया था ..शिल्प को अगर देखना हो तो कॉलि-प्रतिमा को देखना चाहिये । वही एक नट—नागजातिवाला—किसी नृत्य का अभिनय कर रहा था । पैर का वह घुमाव, उसे उससे मैंने खीचा...दुनिया के अर्थ को...एक-एक करके श्रेणी-बद्ध...मलय की वह नटिनी ही सुख की शान्ति को; उस

अपूर्व मुसकान को, अर्थ-हीन अर्थ को . फैलार्कस, तुम्हें क्या ? तुम मज़ाक करनेवाले हो। उपनिषदों मे मैंने ढूँडा . हिम-गिरि मे ढूँढ़ता फिरा...शान्ति उस रात को...उसी रात को जब मेरी पत्नी मीनलोचनी मरी मिली...साँच को आँच क्या ! ..कैसा वह छल था । . आशा ही ने मार्ग दिखाया, उस रूप-सौन्दर्य को पाने के लिए। कितने व्यक्तियों को मैंने ढूंडा !.. उसकी एक छाया . नीलगिरि के क्रूर सम्राट् का दस साल पहले जब शिरच्छेद हुआ था, तब उसके कटि-कम्प में मैंने देखी . ईश्वर नाम की एक चीज़ है. उसके अर्थ को मेरी शिला व्यक्त कर सकी, यह मेरे पूर्व-जन्म का फल है.. इन हाथों से वह साधना पूर्ण कैसे हो सकती थी ? . उसके पीछे एक अर्थपूर्ण वस्तु अगर प्रोत्साहित न करती ?...?

'तुम्हीं ने साधा है ! तुम्हीं ब्रह्मा हो ! तुम्हारी साधना है वह ; सृष्टि ! भ्रान्त मत होओ !—डरो मत ! तुम्हीं ब्रह्मा हो ! सृष्टि-देवता !'—फैलार्कस बोलता ही गया ।

महात्माजी स्मित हास्य के साथ बाहर झाँककर देख रहे थे ।

गाड़ी प्रभात-हाट पर पहुँचकर, पूरब की ओर मुड़ी और गली में एक घर के सामने जाकर खड़ी हो गई ।

तीनो गाड़ी से उतरकर देहली मे आये । एक यवन-वनिता ने उनके पैर धोये। एक काफिर आदर के साथ झुककर कलिंग-वस्त्र से उनको पोछने लगा ।

'आइये, महात्माजी ! फ़ैलार्कस, इधर आ जाओ'— कहकर, शिल्पी दोनो को एक कमरे मे ले गया। उसकी-जैसी उम्र मे उतनी फुरती आश्चर्य की ही चीज़ थी !

'म्यागा, दीप !'—शिल्पी चिल्लाया । वह काफिर भीतर से एक दीया लेता हुआ कमरे मे आया। उस वातायन-विहीन कोठरी मे भी सूत के पतले तार की तरह हवा आ रही थी जो मन व शरीर को मस्त कर देती थी ।

'यहाँ भी दीप नही है ? परदे को हटाइये, महात्माजी ! फैलार्कस, यही मेरा जीवन है !'—कहते हुए उसने परदे को हटा दिया।

दोनो स्तम्भित रह गये। दीप के उस मंद प्रकाश मे, एक पैर को उठाकर नाचने के ढग मे, मनुष्य-जितनी ऊँची एक मूर्ति थी। बिखरी हुई जटा और उस पर चमकती हुई चन्द्र-कला, चिन्मुद्राओ को प्रदर्शित करनेवाले फैलाये हुए हाथ और अधरो पर दिखाई देनेवाला वह अपूर्व मन्दहास—ये सब तरङ्गो पर तरङ्ग की भाँति, मन मे भाव और कल्पनाओ को जगा रहे थे। तीनो वही शिला-रूप हो गये। शिला के हरएक घुमाव मे, हरएक अङ्ग मे कैसी सजीवता, कैसी स्फूर्ति थी !

महात्माजी अपने को भूलकर गाने लगे और बोले—ऐसे दिव्य स्वरूप को देखने के लिए मानव-जन्म की भी आवश्यकता पड़ती है।

'महात्माजी, आपकी इतनी प्रशंसा उचित नहीं है।'

'शिल्पि-वर्य, उनका कहना ही ठीक है। यह सिर्फ कला ही नही, सृष्टि है। इसको अब क्या करोगे ?'

'राजा के मन्दिर के लिए...यह कैसा प्रश्न करते हो ?'

'क्या ! इस बेवकूफी को छोड़ो तो...राजा के अन्तःपुर मे जो नगी मूर्तियाँ हैं उन्ही के पास इसको भी रखो तो उसमे कुछ अर्थ है...इसको फोड़कर पहाड़ी पर फेको तो उन टुकड़ो मे कुछ अर्थ है, चेतनता है...'—फैलार्कस पागल की भाँति बकता गया।

'छिः, फैलार्कस, तुम्हारे भ्रान्त सिद्धान्तो के लिए यवन ही ठीक है—अगस्तूस ही था न ! वह तुम्हारा सम्राट् ! उसी के लिए तुम्हारी यह बकबक ठीक है...'

'शिल्पिश्रेष्ठ, आपके लक्ष्य की पूर्णता राजा की प्रार्थना मे ही निहित है। अब क्यो ये जैन सिर उठाने लगे...!'—महात्माजी ने कहा।

'इन मत्त मानवो की अपेक्षा, उस समुद्र को कही ज़्यादा अक्ल है...'—फैलार्कस गुस्सा करता हुआ बाहर चला गया।

(२)

उसी दिन कुम्भाभिषेक था, उसी दिन मन्दिर मे मूर्ति की स्थापना होनेवाली थी। चोलदेश मे यह बड़ा भारी उत्सव था। शिल्पी का लक्ष्य पूर्ण हुआ। उसको इस बात का दु:ख था कि अपने आनन्द मे भाग लेने के लिए फैलार्कस उस दिन जीता नही रहा।

नये मदिर से घर लौटते वक्त आधी रात बीत गई।

वृद्धावस्था ने उसी दिन उसे कुछ ढीला किया था। वह थककर लेटा और सो गया।

बाप रे! कैसी ज्योति है! अखण्ड, सीमा-रहित प्रदेश! उसमे शिल्पी का लक्ष्य, अर्थ-हीन लेकिन अर्थ-पुष्टि से भरा हुआ वह अप्रतिभ मन्दहास! कोमल हृदय-ताल मे नर्तन! कैसी चेतनता! कैसी सृष्टि!

एकाएक सब ओर अँधेरा छा गया! एक ही गाढान्धकार, हृदय की शून्यता की तरह खाली अन्धकार!..

फिर प्रकाश! अब स्वर्ण-निर्मित मन्दिर! आँखो को चौंधिया देनेवाला प्रकाश!..दरवाजे घटियो की आवाज़ के साथ अपने-आप खुलते हैं.. भीतर वही पुराना अन्धकार!

शिल्पी भीतर जाता है। वह स्थान मानो अन्धकार का गर्भ है। वहाँ दीप की मन्द ज्योति दीखती है! यह क्या! पुरानी शिला! जीव नही! आकर्षक मन्दहास नही!. सब अन्धकार अन्धकार!

अन्धकार के द्वार पर छाया की तरह आकृतियाँ झुकती हुई आती हैं। झुकती हुई प्रणाम करती हैं।

'मुझे मोक्ष! मुझे मोक्ष!'—यही प्रतिध्वनि करोडो के उस छाया-लोक मे सुनाई दे रही थी। शिला की ओर किसी ने आँख उठाकर भी नहीं देखा! इसी तरह!.

दिन, वर्ष, सदियाँ लहरों की तरह लुढकती जाती हैं—उन अनन्त करोड़ों वर्षों मे एक भी छाया आँख उठाकर नही देखती!—

'मुझे मोक्ष..!'—यही टेक, गीत, सब कुछ।

शिल्पी खड़ा है...

कितने ही युग बीत गये ! वह पागल हो उठा। 'जीवन-विहीन मोक्ष-शिला ! तुम्हें फोड़ता हूँ ! पटको ! फोड़ो ! हाय रे ईश्वर ! नहीं फूटोगे ! फूटो ! तुम फूट जाओ ! या तुम्हारा शूल मुझे मार डाले ! अर्थहीन नृत्य...!' वज्र के गर्जन की तरह शिला लुढ़क जाती है— शिल्पी के आलिंगन में, उसके रक्त में वह सिंचित होती है.. रक्त उतनी पवित्र वस्तु है ! वही पुराना मन्दहास...!

शिल्पी चौंककर उठ बैठा। शुक्रतारा का उदय हुआ। नये मन्दिर के शंख-नाद के साथ उसका विह्वल मन टकराता था।

'कैसा पैशाचिक स्वप्न है ! छिः !'—कहते हुए उसने ललाट पर भस्म लगाई।

'कैलाकेंस—बेचारा अगर वह होता...'—शिल्पी का मन शान्त न हुआ।

कन्या-कुमारी : : कुमार स्वामी

[श्री कुमार स्वामी का जन्म १९०७ ई० में हुआ था। आपने ऐतिहासिक और कल्पनाप्रधान कई सफल कहानियाँ लिखी हैं। अपने साथ अपने पाठकों को भी बहा ले जाने की क्षमता आपमें है। कला की अभिव्यक्ति, वर्णन-विस्तार परिभाषा और शिल्प-रचना की दृष्टि से आपकी कहानियाँ खरी उतरती हैं। भाषा अलंकार-युक्त संस्कृत-मिश्रित और गतिमय होती है। शैली का निरालापन आपकी अपनी चीज है। अंग्रेजी और बँगला-साहित्य का आपने गम्भीर अध्ययन भी किया है।

'कन्या-कुमारी' वातावरण-प्रधान एक सुन्दर रचना है। पाठक कहीं अतीत में खो जाता है, भटक जाता है। रोमांस और कल्पना की खूब उड़ानें ली गई हैं।—सं०]

कन्या-कुमारी—वह जगह, जहाँ तीन समुद्र-राज एक साथ मिलकर बड़ी आवभगत के साथ भारत-देवी के पाद-पद्मों को छूते हैं। मै एक चट्टान पर लेटा हुआ, चारों ओर घिरे हुए माया-दृश्य मे लीन था। समुद्र मे डूबकर सिर्फ सिर को बाहर दिखानेवाले गोल-गोल प्रस्तरखण्डों पर उछलकर गिरती हुई तरंगें दूध की तरह बह रही थी। पानी मे तैरता हुआ सफेद जल-पक्षियों का समूह, समुद्र की नीलिमा मे उसकी शुभ्रता निराली ही झलक रही थी। तरंगों से विकीर्ण जल-कणों पर सूर्य-रश्मि के पड़ने से सात वर्ण बिखर गये थे। नील गगन के प्रेम मे मस्त होकर समुद्र के उमड़ने का वह अद्भुत दृश्य था। जलधि के गम्भीर घोष और किरणों के वर्ण-संगीत पर मुग्ध होकर मेरी हरएक नाड़ी सम-ध्वनि मे बज रही थी। इसी चुलबुले महासागर के अन्तस्तल मे ही तो हमारा पुराना तमिल-लोक नींद ले रहा है! धड़ाधड़ कई बातों की स्मृतियाँ मेरे मन के अन्तराल मे जाग उठी। कल्पना के झूले मे झूलता हुआ, मैं उस तमिल दुनिया मे चला गया, जो ऐतिहासिक अन्वेषण के बाहर

है। भूला हुआ वह विचित्र युग, चल-चित्र की तरह मेरी आँखो के सामने फिरने लगा। यह वास्तविक जगत् जिसमे मै बन्द था, सकुचित पुष्प-दल के समान सिकुड़ता गया।

×   ×   ×

पर्वत के किसी ऊँचे शिखर पर से देखनेवालो को, प्रसादो से भरा हुआ यह सुन्दर तमिल नगर, और उसे घेरकर बहती हुई चाँदनी-सी 'पहरुली' नदी के समुद्र-राज से मिलने का सुन्दर दृश्य दिखाई देता। मिश्र, रोम, शावक आदि दूर-दूर के देशों से, सुवर्ण से लदकर आनेवाले और यहाँ की वस्तुएँ ले जानेवाले बड़े-बड़े जहाज मत्त-गज के समान उस नदी मे चलते-फिरते थे। मन्दिरो और सभा-भवनो मे भाँति-भाँति की पोशाक पहने हुए भिन्न-भिन्न जाति के लोग पाये जाते थे। भिन्न-भिन्न धर्म और सप्रदायवालो के मन्दिरो से वह नाम-रहित नगरी सुशोभित थी। उन मन्दिरो को बनानेवाले शिल्पी अवश्य ही सौन्दर्य-ज्ञानी रहे होंगे। शहर के सारे घर लकड़ी के बने हुए थे। राजा का महल गूगुल की लकड़ी से बना हुआ था। उसका सौरभ बहुत दूर तक फैल गया था। ऊँची श्रेणी के चित्रो से राजा का अन्तःपुर सजाया गया था। सन्ध्या-समय, उपवनो मे, चित्र-मण्डपो मे और नदी-तट पर तमिल-रम्भाओं का मानवो से प्रेम करने का स्वर्गीय दृश्य दिखाई देता। जब विदेशी रम्भाएँ तितलियो की तरह राज-मार्गों मे झूमती जाती, तब ऐसी सुगन्ध फैल जाती मानो वे स्वर्ग-लोक से आ रही हैं। अपने फूल-जैसे चेहरो को घूँघट मे छिपाकर क्लेश पानेवाली आर्यदेशीय ललनाओ के विरुद्ध, तमिल युवतियाँ निर्भीक और स्वतन्त्र होकर जीवन के सभी पहलुओ मे पुरुषो से समता रखती थी, जिससे देखनेवाले आश्चर्य मे डूब जाते थे। उस जमाने के तमिल-लोगो की ज्ञानोन्नति का वर्णन करना असम्भव है। सगीत मे भाव और शिल्प-कला मे प्राण की सृष्टि करनेवाले ये ही तमिल-पूर्वज थे।

उस युग के तमिल राजा किसी के आगे सिर झुकाना जानते ही

नहीं थे और वे लेमूरिया (पापी समुद्र इसे निगल गया) आदि भू-खण्डों के चक्रवर्ती थे। उस जमाने के तमिल-लोग बड़े ही साहसी थे। वे महासागर की उत्ताल तरंगों को लाँघकर, अपने भुज-बल और मनो-शक्ति से विदेशों में भी तमिल सभ्यता और व्यापार को फैला आये। राजा और प्रजा ने एक साथ मिलकर देश को ऐश्वर्य का केन्द्र बना दिया था। उस समय एक कीर्ति-धवलित राजा तमिल-देश का पालन कर रहा था। उसका नाम हमें मालूम नहीं। उसकी इकलौती बेटी थी, जिसका जन्म होते ही राज-महिषी ने सदा के लिए आँखें मूँद लीं। बालिका का नाम 'कुमारी' रखा गया। राजकुमारी अपनी मृत माता के समान ही रूपवती थी। जब कभी राजा उसे देखता तब उसे अपनी पत्नी का खयाल हो आता और उसकी आँखें आँसू में भीग जातीं। वह लाडली बच्ची उसकी आँख की पुतली थी। और उसका शोक दूर करती रही। राजा कभी कोई ऐसा काम न करता, जिससे अपनी बेटी का मन दुखे। पत्नी पर उसका जो शाश्वत प्रेम था, उसने उसे राज-कुमारी को स्वेच्छापूर्वक छोड देने के लिए मजबूर किया। राजपुत्री के परिपालकों और विद्या-गुरुओं की आँखों में उसका यह यथेच्छाधिकार अवश्य ही चुभ रहा था।

एक दिन मन्त्रियों ने राजा के पास जाकर राजकुमारी के लिए एक योग्य पति ढूँढने का अनुरोध किया। न जाने कैसे यह बात राजकुमारी के कानों तक पहुँच गई। उसने दृढ़ता के साथ कह दिया—पिता, मैं सिवाय शिवजी के और किसी से विवाह नहीं करूँगी। पुत्री का आदर करनेवाला पिता इसका आक्षेप भी कैसे करता!

आर्यावर्त्त के राजकुमार और मिस्र के महाराज राजकुमारी का पाणिग्रहण करने के इरादे से आये। किंवदन्ती है कि सालमन भी अपनी असंख्य निधि को कुमारी की भेंट चढ़ाकर उससे ब्याह करने आया था। (इस कल्पित वचन को अगर हम न मानें तो भी कोई हर्ज नहीं) लेकिन सभी लोग व्यर्थ-मनोरथ होकर लौट गये। सभी राजा

लोग इस बात से नाराज़ थे कि इस लड़की के हठ का कारण इसका पिता ही है, और उन्होंने तमिल-राजा के गर्व को मिटाने का संकल्प कर लिया।

इस बात से लोगों में भी अशान्ति फैलाने लगी। उन्होंने सोचा हम अभी इस तमिल-राज्य मे स्वतन्त्र होकर आनन्द से जीवन विता रहे हैं। युद्ध होने पर शायद यह तमिल-राज्य दूसरो के अधीन हो जाय और हम लोगो को गुलाम होकर रहना पड़े तो...? न जाने क्यों यह राजा अपनी अक्ल खोकर लड़की के ही रास्ते पर चल रहा है?

एक दिन सभी प्रजा-गण राजा की सभा में गये और अपने विचारों को उसके सामने रखा। उन दिनो प्रजा की सत्ता अधिक थी। राजा उनके विरुद्ध नहीं चल सकता था।

राजा ने तुरन्त अपनी बेटी को बुला भेजा। राजकुमारी उद्यान में सहेलियों के साथ गेंद खेल रही थी। उसने कहला भेजा—मै अभी नही आ सकूँगी। राजा को बड़ा गुस्सा आया। वह खुद उद्यान मे गया और सखियों के साथ खेलती हुई अपनी लाड़ली बेटी से बड़ी रुखाई के साथ कहा—कुमारी, तुमसे विवाह करने के लिए जो भी राजकुमार आते हैं, उनको इस प्रकार दुत्कार देना तुम्हारे लिए उचित नही है। तुम इसी धैर्य से कि मैं तुम्हारे प्रतिकूल कोई काम नही करूँगा, मनमाने काम कर रही हो। इन सभी राजकुमारो मे से क्या कोई एक भी तुम्हें पसन्द नही आया? विदेश के सभी राजा लोग अब मेरे वैरी हो चले हैं, और मुझे नीचा दिखाने के लिए कमर कसे हुए हैं। मेरी प्रजा भी उनसे भीत होकर मेरी निन्दा कर रही है। 'जीवन्मृत' कहकर तुम्हारा उपहास कर रही है। हमारे कुल-देवता भी तुम्हारी इस अनीति को नही सह सकते। अगर वरुण देव हम पर क्रुद्ध हो जाता तो हमारे देश को समुद्र में डुबो देता! तुम्हारा यह बुरा हठ ठीक नहीं है। मेरी जीवन-निधि, मेरा कहना सुनो। शीघ्र ही तुम्हारे अनुरूप आर्यपुत्र उत्तर से आनेवाला है। तुम जो कुछ भी चाहो, उसे वह कर सकता है। वह

बड़ा बुद्धिमान् और मन्त्र-शास्त्र का पारङ्गत है। बेटी, तुम अब अठारह साल की हो गई हो। या तो तुम उसके साथ विवाह कर लो या उस पहाड़ के शिखर में जो गुफा है उसमें आजीवन कुमारी रहकर अपना दुःखमय जीवन बिताओ। इन दोनों में से तुमको कौन-सी बात पसन्द है?

राजकुमारी सिर झुकाकर, किंकर्तव्य-विमूढ हो, पाषाण की तरह खड़ी रही। उसके हाथ के कमल से एक-एक दल गिरता जाता था, जिससे उसके मन में उद्भुत भावना का वेग प्रकट होता था। कुमारी का मन विवाह में बिल्कुल नहीं लगा। पहाड़ में अकेली रहना ही उसने बेहतर समझा। शिवजी से प्रेम करनेवाली, किसी दूसरे पुरुष को क्यों चाहेगी? ओस के फूलों से उसने शिवजी की पूजा की थी—यह एक गुप्त बात थी; उसकी सहेली भी इस बात को नहीं जानती थी। एक जमाना था जब पर्वत-कुमारी भी इसी तरह शिवजी को पति-रूप में पाने के लिए निराहार रहकर हिमाद्रि में तप कर रही थी। कौन कह सकता है कि इस दक्षिण-कुमारी की एकाग्र-पूजा से शिवजी का मन आकृष्ट न होगा? तरह-तरह के संकटों से राजकुमारी का मन डाँवाडोल हो रहा था। पिता को प्रसन्न रखने के लिए उसने आखिर कहा—पिताजी, आपका कहना ठीक है। मैं विवाह करूँगी।

कन्या-कुमारी शयनागार में गई और मंच के सिरहाने रखी हुई एक चन्दन-मंजूषा से महादेव के निर्मल स्फटिक लिंग को उठाकर आँखों से लगा लिया। वह गद्गद् होकर प्रार्थना करने लगी—हे ईश्वर, मैं तुम्हारे अतिरिक्त और किसी को स्वीकार न करूँगी। हे शंकर, मुझे इस आपत्ति से छूटने का कोई रास्ता बता दो।

उस दिन से पाँच दिन तक वह अपने कमरे से बाहर आई ही नहीं। वह भूख-प्यास सब भूल गई। शिवजी के ध्यान में मग्न, वह पुष्प-कन्या, ईश्वर के किसी संकेत की प्रतीक्षा कर रही थी। सहेलियाँ डर के मारे उसे बुलाने नहीं आईं। किवाड़ों के दराज से निकलता हुआ धूप-गन्ध उसके जीवित होने का द्योतक था।

छठवें दिन, एक अश्रुतपूर्व प्रसन्नता से कुमारी का मुख खिल उठा। कमरे से बाहर निकलते वक्त उसके म्लान वदन में झलकते हुए दिव्य तेज को देखकर सहेलियों ने अनुमान किया कि उसको शिवजी का प्रसाद मिल गया है। फुलवाड़ी में छः दिनों से सूखी हुई पुष्प-कलियाँ उसको बाहर निकलते देख, आनन्द-विभोर होकर खिल गईं और उनका गन्ध पवन में फैलने लगा। मोर पखों को फैलाकर उसके हाथ के दानों को चुगने के लिए दौड़े हुए आये। राज-प्रासाद फिर एक बार सजीव हो उठा। जब कुमारी ने शिवजी पर फूल चढ़ाकर अपनी अभीष्ट-सिद्धि के लिए संकेत माँगा, तब शिव-लिंग के मस्तक से एक नीला फूल नीचे गिरा। 'लेकिन नीला रङ्ग किस चीज़ का द्योतक है ? हलाहल भी तो नील है ? लेकिन नीलकण्ठ के दिये हुए निर्माल्य की परीक्षा करना पाप होगा। इससे भलाई ही होगी।'—यह सोचकर कन्याकुमारी का मन कुछ शान्त हुआ। लेकिन उस नील पुष्प का ध्यान, उसके हृदय के एक कोने में खटक ही रहा था। स्वप्न में भी वही नील पुष्प !

दक्षिण-कुमारी का पाणि-ग्रहण करने के लिए आर्यावर्त्त से राज-कुमार के आने का समाचार देश-भर में फैल गया। चारों ओर कोला-हल मच रहा था। देहली पर लगाई हुई रंग-वल्लियाँ और वन्दनवार आनेवाले मंगल के सूचक थे। सारे शहर में लोग आनन्द मना रहे थे। दूध जैसे सफेद घोड़ों के रथ पर सवार आर्यपुत्र नगर-द्वार से होकर राज-मार्ग में आ रहा था।

रास्ते में लोगों की खासी भीड़ थी। तमिल ललनाएँ घर के काम-काज छोड़कर अपना शृङ्गार करने में व्यस्त थीं। आर्यराज को अपना ऐश्वर्य दिखाने का लोभ वे संवरण न कर सकीं। राज-मार्ग में अब रथ आने ही वाला है। एक रमणी जो पैरों में महावर लगा रही थी, खिड़की के पास दौड़ी हुई आई। उसके अरुण पद-चिह्न स्फटिक भूमि पर अङ्कित हो गये। एक दूसरी जो आँखों में काजल लगा रही थी, हाथ में सोने की सलाई लिये हुए द्वार पर आ खड़ी हुई। दूसरी युवती जब जल्दी-

जल्दी मेखला पहनकर चलने लगी तब उसमे लगी हुई मणियाँ छूटकर नीचे गिरने लगी , उसका भी उसे ध्यान नही रहा। एक और सुन्दरी नगाड़े की आवाज़ सुनकर, ओढनी के हट जाने पर भी उसे एक हाथ से सँभालती हुई, केश-पाश के खुल जाने पर भी सिर्फ सिर को बाहर निकालती हुई सड़क की ओर देख रही थी। एक और युवती जो निस्तब्ध, द्वार पर खड़ी थी, उस सुन्दर दृश्य को देखकर रोमाचित हो गई। कोटि-मन्मथ के समान सुन्दर दिव्य रूप उस रथ मे दीख पड़ा। किंकिणियो की झनकार के साथ जब रथ राजमहल के सामने जाकर खड़ा हो गया, तब राजा आगे आ मगलोपचारो से आर्यराज का स्वागत कर उसे महल के अन्दर ले गया। आर्यकुमार का परिवार, स्वर्णपुरी तमिल-शहर के वैभव को देखकर दंग रह गया।

आर्यकुमार के शृङ्गार-मडप मे बैठते ही, अप्सराओं को भी मात करनेवाली नटियो का मनोहर नाच और गान शुरू हो गया। मागध-वृन्द वीणा मे, बिना संस्कृत मिले, शुद्ध तमिल गीत गाने लगे जिसे सुनकर लोग नही अघाते थे। तमिल-मल्ल अपने लोहे-जैसे बदन की ताकत दिखा रहे थे, जिसे देखकर लोग विस्मय-चकित हो रहे थे। सामन्त-राज, अमूल्य उपहारो को लिये हुए नगे सिर खडे थे। आर्य-पुत्र ने भी प्रसन्न-चित्त होकर उन्हे ले लिया लेकिन उसका मन और कही लीन था। अन्तःपुर से नूपुरो की झकार सुनाई देती थी। झरोखो से हजारो कमल-नेत्र इन कौतुको को देख रहे थे।

उनमे से लज्जा से आँख चुरानेवाली वह तरुणी कौन है? वह कन्या-कुमारी तो नहीं है? छि:, यह बात कभी नही हो सकती। जिसने अपना चित्त महादेवजी को अर्पण कर दिया है, वह दूसरे मानव की ओर क्यो नजर उठाकर देखेगी? यह असभव बात है। यद्यपि कन्या-कुमारी का बाह्य आचरण पुष्प के समान कोमल होगा, तो भी उसका अतरग तो वज्र के समान कठिन ही रहेगा।—आर्यपुत्र तमिलों की टीमटामों से ऊब उठा। उसका मन किसी दूसरी चीज को

खोज रहा था। आर्यपुत्र की यह कैसी प्रवृत्ति है ?

दूसरे दिन कन्या-कुमारी मगल-स्नान कर अपने को शिवजी को अर्पण करने के बाद, चपक-रंग की ओढनी-ओढ़े सहेलियों के साथ, उस दिव्य पुरुष का दर्शन करने आई। उसने कोई गहना नही पहना था, और वह पहनती भी तो उसका सौन्दर्य कम हो जाता। वह पवित्रता की मूर्ति थी। उसके कुन्तल-भार मे शिव निर्माल्य चमक रहा था। यह क्या ? आर्यपुत्र को देखते ही वह धीर तमिल ललना सिर क्यों झुका लेती है ? उसने उसमे कौन-सा आश्चर्य देखा ? शायद राज-पुत्र की शिखा से झाँकता हुआ नील पुष्प कुमारी को पिछली किसी घटना का स्मरण करा रहा है। आर्यपुत्र की आँखो मे एक माया-शक्ति थी। वह ज्ञानियों मे पाई जानेवाली पवित्र ज्योति थी। कन्या-कुमारी का शरीर यों पुलकित क्यों हो रहा है ? इसलिए तो नही कि आर्यपुत्र के बदन की गठन शिवजी-जैसी है ? मन्त्रशक्तिवाला वह आखिर कौन है ? शिवजी ही यह रूप लेकर तो नहीं आये हैं ? लेकिन सूक्ष्म-रूपी देव इस मानव-लोक मे कैसे आ सकता है ? असंख्य लीलाओंवाले भगवान् के लिए यह कोई बड़ी बात नही है। दिन-मणि के समान भासमान आर्यकुमार के वदन-मडल को देखकर कन्याकुमारी की आँखे चौंधिया गई। वह अपने-आप को सँभालकर चञ्चल स्वर मे कहने लगी—हे आर्यपुत्र, पिताजी ने कहा है कि आप विचित्र मन्त्र-शक्तिवाले हैं। मै चाहती हूँ कि मै अपने पति को शिव के रूप मे ही पाऊँ। अगर आप मेरी शर्त को पूर्ण करेंगे तो मै आपकी दासी होकर रहूँगी।

आर्यकुमार ने आनन्दित होकर पूछा—कहो, कुमारी ! तुम क्या चाहती हो ? मै अवश्य ही उसे पूर्ण करूँगा।

राजकुमारी ने मुसकराते हुए पूछा—एक ही रात मे, मेरे महल के सामने दीखनेवाले मैदान मे, हरएक देवता के रहने योग्य अपूर्व शिल्पोवाले एक हज़ार मन्दिर आप बना सकते हैं ?

आर्यकुमार के भाल पर चिन्ता की रेखाएँ दौड़ गई। कुछ देर

तक उसकी आँखे ध्यान मे मग्न रही। सभी लोगों ने सोचा कि यह असम्भव कार्य है ; लेकिन उस जगन्नियन्ता के विधान को कौन जान सकता है ? जब उस दिव्य-रूपधारी आर्य ने सिर हिला दिया तब कुमारी का दिल धड़क उठा और सब लोग आश्चर्य-चकित रह गये। उसने दृढता के साथ गम्भीर स्वर मे कहा—कुमारी ! जैसा तुमने कहा है, उस विशाल मैदान मे, कल बाल-सूर्य की किरणों मे चमकनेवाले एक हज़ार तुङ्ग गोपुरो को तुम देख सकोगी।

इस वाक्य ने लोगों के मन मे एक शका पैदा कर दी। राजकुमारी आर्यपुत्र को नमस्कार कर अपने कमरे मे लौट आई और दिल मे अनेको आशकाओ के साथ फूलो के बिछौने पर पडी रही।

'शायद वह इस काम को पूरा कर दे ? शिवजी का फैसला भी वही हो तब ? यह नील पुष्प मेरे जीवन का विष तो नही होगा ?...' फिर दूसरी विचार-धारा बहती—इस कार्य को मनुष्य नही कर सकता, अगर कोई कर सकता है तो वह यथार्थ मे परमेश्वर ही है।

इतना सोचने पर भी उसका मन चचल होकर झूल रहा था। वह रातभर रुद्राक्ष-मालाओं को फिराती हुई, शिव-नाम का स्मरण कर यही जपती थी—हे शिव, यह काम न हो। उसी क्षण उसकी बाँई आँख फडकने लगी। 'न जाने यह अच्छा शकुन है या मेरी इच्छा के प्रतिकूल होने का सूचक है.. ' इस प्रकार वह घबराने लगी। रात-भर पलक से पलक न लगी। यही विचार यही घबराहट थी। चाँदनी से चाँदी बिखरे हुए उस विस्तृत मैदान को उसने एक बार खिड़की से देखा। एक भी मन्दिर नहीं था ! उसका मन कुछ शान्त हुआ। लेकिन सवेरे तक क्या से क्या हो जायगा ? भारी मन से झगडती हुई राजकुमारी की आँखे झपकी। उसी क्षण, बिजली की कान्तिवाले एक देवता का रूप स्थिर दृष्टि से राजकुमारी की निद्रा के सौन्दर्य का पान कर रहा था। लेकिन उस दिव्य पुरुष के चेहरे पर यह दुःख का निशान क्यो दीखता है ?

वह अद्‌भुत काम तब हुआ, जब राजकुमारी सो रही थी। उस

समय बाहर भी एक अद्भुत काम हो रहा था। कुछ घड़ियों तक एक ऐसी माया चल रही थी, जिससे ये सब बातें किसी को मालूम न हुईं। वह मामूली आदमी का काम थोड़े ही था ?

प्रभात होने की ही देर थी, सब लोग नींद से उठकर उत्सुकता के साथ बाहर देखने आये। एक हज़ार ऊँचे गोपुर आकाश को छू रहे थे ! राजकुमारी मारे डर के, कमरे की खिड़की को नहीं खोलती थी। खोलते ही अगर मन्दिरों के दर्शन हो जायें तो. .? लेकिन बड़े धीरज के साथ जब उसने वातायन खोलकर देखा तब उसे एक स्वप्न-पुरी दिखाई दी। उसके तोरण द्वारों में शहनाई प्रभात गीत अलाप रही थी। कन्या-कुमारी के शयनागार के द्वार पर, निश्चल मुख-कान्तिवाला आर्यकुमार विवाह-वेष धरकर कुमारी के आने की प्रतीक्षा कर रहा था। राजकुमारी ने भी अपनी सभी वेदनाओं को मन में दबाकर, प्रसन्नता के साथ आर्य-कुमार का हाथ पकड़ लिया। उसकी उँगलियाँ काँपने लगीं। वे दोनों एक-एक करके सभी मंदिरों में गये और प्रत्येक मंदिर के देवता के दर्शन कर आये। अन्तिम मंदिर का दर्शन कर लौटते वक्त कन्या-कुमारी का मुख आनन्द से चमक रहा था। उसने ऐसा क्या अद्भुत दृश्य देखा था ? उसके मुख पर विजय का चिह्न दीख पड़ा। कन्या-कुमारी ने सिर उठाकर आर्यपुत्र से पूछा—आर्यपुत्र ! मैं आपकी शक्ति की प्रशंसा करती हूँ लेकिन आपने अपना वचन पूर्ण नहीं किया है। मैं आपको कैसे माला पहनाऊँ ?

आर्यपुत्र का जो हाथ राजकुमारी को पकड़े हुआ था, वह खुद ही छूट गया। कुमारी की बात को सुनकर सभी लोग भौचक्के रह गये। सक्रोध ललाट को सिकोड़ते हुए आर्य-कुमार ने कहा—मैंने अपनी प्रतिज्ञा पूरी की है। ये मन्दिर उसके प्रमाण हैं।

राजकुमारी के वदन पर मुस्कराहट दौड़ गई और उसने धीरज के साथ कहा—मैंने कहा था न कि एक हज़ार मन्दिर बनाने हैं ? लेकिन मैंने गिनकर देखा तो एक मन्दिर कम है। मेरे इष्ट-देव शिवजी का मन्दिर कहाँ है ?

अचानक एक जोर की हँसी सुनाई दी. नीले आसमान में उसकी प्रति-ध्वनि हुई ; नीला समुद्र काँप रहा था। लोगों के मन में कुछ भय का भास हुआ और वे बिना कारण ही डरने लगे। भूमि के नीचे एक विस्फोट हुआ, जिससे सारा ब्रह्माण्ड काँप गया। 'हाय! वहाँ सामने.. ' कहते ही राजकुमारी के अधर निस्पन्द हो गये। सामने आते हुए भयङ्कर दृश्य को देखकर उसकी आँखें पथरा गईं। लोगों को सूचित करने लिए जब उसने रुद्राक्ष-माला को उठाना चाहा, तब उसका दाहिना हाथ उठा ही नहीं। उसी समय भूमि को भेदता हुआ एक बड़ा भारी मंदिर निकला। हँसती हुई कुमारी के वदन में काल मेघ की छाया छा गई। कन्या कुमारी शिला हो गई! लेकिन उसकी चेतना नष्ट न हुई। सामने दिग्वलयों का अन्धकार दीख पड़ता था और समुद्र का घोर गर्जन सुनाई देता था। पृथ्वी और आकाश को एक करके समुद्र और पवन प्रलय नृत्य करने लगे! अपनी प्यारी तमिल-भूमि को निगलनेवाली पहाड़-जैसी तरंगों को देखकर कुमारी ने आँखें मूँद लेनी चाही। लेकिन शिला भी कहीं आँखें मूँद सकती है? जिस विपरीत घटना का वह कारण बनी थी, अगर वही उसे न देखती तो...? वह शिला रो उठी—अरे मेरे प्रेमी! यह भी क्या तुम्हारी लीला है? मैं इसे नहीं जानती थी। क्या तुम अपना रौद्र रूप लेकर मेरा उद्धार करने आये हो? मैं मूढ़-मति इसे क्या जानती थी? मैं इस हालत में रहूँ, यह क्या तुम देख सकते हो?

लेकिन शिला के आँसू मनुष्यों की दृष्टि में नहीं पड़ सकते। लाल-लाल मेघ, आकाश में जटाओं को बिखेर कर नृत्य करने लगे। मेघ-नाद शिवजी के शंख की ध्वनि जैसा था। हरिणियों की तरह उछलती हुई, तप्त लोह की भाँति तपती हुई बिजलियाँ धड़ाधड़ समुद्र में गिरने लगीं। रुद्र के प्रलय-ताण्डव के संघर्ष को न सहता हुआ सागर भी गम्भीर होकर 'थेई-थेई' करके नाचने लगा। कन्या-कुमारी शिलारूपिणी होकर यह सब देख रही थी। लेकिन अपने हृदय में हलचल मचानेवाले

दुःखो को वह प्रकट न कर सकी। कैसा कठोर है शिव का वह शाप! पुरानी तमिल-दुनिया को समुद्र निगल गया था, इस बात की साक्षी होकर ईश्वरी खड़ी है!

× × ×

कल्पना की चिड़िया कल्पना-लोक को उड़ गई। मुझे फिर अपनी याद आई। सामने वही समुद्र था। पीछे देखा तो, ईश्वरी कन्याकुमारी अब तक शिवजी के लिए तप कर रही है। न जाने कब उस पर शिवजी की कृपा-दृष्टि पड़ेगी?

———

मुसकाती मूरत : : चिदंबर सुब्रह्मण्यन्

[श्रीचिदंबर सुब्रह्मण्यन् का जन्म १९१२ ई० में हुआ था। कहानी की कला और परिभाषा का आपने गम्भीर अध्ययन किया है। इस विषय पर आपके विचार भी मननीय हैं। आपकी कहानियों मे वर्णन, भाव और कल्पना—प्रत्येक को अपना-अपना विशिष्ट स्थान मिलता है भाषा काव्यमय और लालित्य-पूर्ण होती है।

'मुसकाती मूरत' संकेतवाद की एक उत्कृष्ट रचना है। कला की अमरता और कलाकार की तन्मयता का विशद वर्णन है। कहानी बहुत ऊँची उठी है।—सं०]

'मुओ का कालेज' देखने गया था। पढे-लिखो के 'म्यूजियम नाम की अपेक्षा गँवारो का 'मुओ का कालेज' नाम मुझे बहुत ही ठीक लगता है।

रुई और फूस से भरे शरीर और स्फटिक की आँखोवाले हरिण, मोर, बाघ, बकरे, शेर—सभी तरह के जानवर बगैर हिले-डुले खड़े हैं। उन निर्जीव जानवरो की निष्प्रभ आखो मे मृत्यु की प्रभा झिलमिला रही है। उनकी निस्तब्धता मे काल के शखनाद की प्रतिध्वनि सुनाई दे रही है। ये प्रेत गण यम की शक्ति और कीर्ति को अपने मौन-स्वर मे गुनगुना रहे हैं।

मेरी विचार-शक्ति उत्तेजित हुई। दुनिया ही 'मुओ का कालेज' है। सजीव प्राणी भी इन जानवरों के सदृश ही हैं। मुर्दों के बारे मे कहने क्यों जाऊँ ? यह जगत् ही श्मशान है। हमारे पूर्वजो की ठठरियो पर आज हम सचार कर रहे है। मृतको की भस्म मे, मास को पचानेवाली मिट्टी में पैदा हुए अन्न को खाकर, मेरा शरीर पुष्ट हो रहा है। मुझे पैदा करनेवाले मेरा आहार बनते हैं। लेकिन फिर वही कहानी है। आज मेरी छाती पर खेलनेवाला, स्वय आनन्दित होकर मुझे भी आनन्द देनेवाला मेरा पुत्र कल मेरे वृक्षस्थल के अस्थि-पजर पर गतोत्साह होकर

रेंगता रहेगा। यही जीवन का दारुण सत्य है, मृत्युराज के द्वारा दिखाया जानेवाला प्रत्यक्ष प्रदर्शन है।

सौ फुट लम्बा तिमिंगिल लोहे की जंजीर से लटक रहा है। जब जीता रहा, तब इसने कितने जहाज़ों को डुबो दिया होगा? बीस फुट ऊँचा मस्त हाथी पेड़ पर कीलों से लगाया हुआ खड़ा है। सजीव रहते वक्त इसको कौन बाँध सकता था? इसको बाँधने के लिए यम-पाश की ज़रूरत थी। जीवन के मधुर वर्ण-वैचित्र्यों को दिखाकर, आनन्द-नृत्य करनेवाला मोर, प्रेत-चिह्न दिखाता हुआ मृत्यु नर्तन कर रहा है। 'प्रेम, प्रेम' का काव्य कूकनेवाला कोकिल 'मृत्यु, मृत्य' की भावना मे काँटे-सा सूख गया है। मृत्यु, मृत्यु! ऐसी कोई जगह है, जहाँ वह नहीं? सर्वत्र उसी का श्वास है! सर्वत्र उसी की गन्ध! हाय, भगवन्! भगवान्? मृत्यु ही प्रत्यक्ष भगवान् है। वही सर्वव्यापी है।

'छिः छिः! जीवन को निगलनेवाले इस राक्षस से बचने का क्या कोई उपाय नहीं है? बस; बस है इन पिशाच का मुख-दर्शन! इस श्मशान मे अब एक क्षण भी रहा नही जाता'—मैं हुँकार करता हुआ वहाँ से दौड़ा। पैर से कोई चीज टकरा गई। शायद यम से तो नहीं टकरा गया? मैं काँप उठा। अच्छा हुआ, वह थी बुद्ध की प्रतिमा। मुझे भान हुआ कि मै शिल्पशाला मे हूँ। प्रतिमाएँ श्रेणी-बद्ध रक्खी गई थीं।

मरे चमगीदड़ और निर्जीव उल्लू को देखकर भयभीत हो मै यहाँ भाग आया। बुद्ध की शान्ति-मुद्रा से मेरा मन शान्त हुआ। आश्चर्य-युक्त भक्ति, श्रद्धा, मन की पवित्रता और उत्सुकता के साथ मै वहाँ की सब मूर्तियों को देखता आ रहा था। देव, चैतन्य, बुद्ध, त्रिमूर्ति, देवियाँ, नटराज की मूर्ति, सुब्रह्मण्य आदि कई मूर्तियों को मै ध्यान से देखता आया। यहाँ भी निस्तब्धता छाई हुई थी। लेकिन यह थी अमरत्व की शान्त; काल-पाश से निर्लिप्त पाषाण-मूर्तियों की गर्व-भरी सगीत-ध्वनि।

हजारों वर्षों के प्रयत्न, हजारो कलाकारो के स्वप्न—इन प्रस्तरों मे

विकसित हुए हैं। जीवन की सूक्ष्मता को इन प्रस्तरों में न देखना संभव नहीं था। नश्वर मनुष्य के अमरता पाने के प्रयत्नों के संघर्ष में इन मूर्तियों का जन्म हुआ है। मूर्ति के हरएक घुमाव में वह संघर्ष ध्वनित होता है। सौन्दर्य के उपासकों के लिए नाश नाम की कोई चीज़ होती ही नहीं।

आश्चर्य करता हुआ चला। हरएक मूर्ति में एक-एक नवीनता, एक-एक तत्त्व प्रगट हो रहा था। कितनी कल्पनाएँ मेरे मन में उठीं। हृदय में एक अवर्णनीय आनन्द हुआ। एक कोने की ओर मुड़ा। उधर एक मूर्ति ने मुझे अपनी ओर बरबस खींचा, मानो मुझे रस्सी डालकर खींच रही हो।

लक्ष्मी के पास रखी हुई वह मूर्ति, लक्ष्मी के साथ पैदा हुए अमृत की भाँति अमर थी। वह एक दैवी शिशु की मूर्ति थी। सृष्टिकर्ता शिल्पी ने मानो अपने सारे प्रेम को उस पर उँडेल दिया हो। उसने छेनी से उसे छेदा ही नहीं होगा, उसे जोर से दबाने में भी उसका मन दुखा और तड़पा होगा। हँसते हुए मुख की सृष्टि करने में उसे कैसी तपस्या करनी पड़ी होगी। गाल का वह गड्ढा एक लंबी कहानी सुना रहा है। उस मूरत की जन्म-कथा एक बड़ा भारी पुराण है। उसका प्रत्येक अवयव वही कहानी सुना रहा है। 'इस मूर्ति का विवरण जरूर पढ़ने लायक है। वर्णन-पत्र कहाँ है? वह है तो! ठीक, यह रसमयी कहानी पढ़ूँगा।' मैं पढ़ने लगा।

× × ×

कई दिन पहले की बात है। अमरनाथ नाम का एक शिल्पी था। वह महान् कलाकार, अत्यन्त सूक्ष्म और जटिल विषयों को प्रस्तर पर दिखलानेवाला था। ऐश्वर्य उसके पास असीम था। मनचाही सुन्दरी उसकी पत्नी थी। लेकिन उसे एक कसक थी। उसके बेटा नहीं था।

वह 'पुत्' नामक नरक की परवाह नहीं करता था। अन्य लोगों के बारे में वह कभी नहीं सोचता था। इस लोक में अपने नाम को धारणकर उसे स्थायी बनानेवाला कोई जीव पैदा नहीं हुआ, यही

उसकी चिन्ता थी। उसके नाम को, जब तक पृथ्वी स्थित है तब तक, पारम्परिक क्रम से स्थायी बना रखने के लिए एक बच्चे की ज़रूरत थी न ? जिस निस्सीम शृङ्खला के सम्बन्ध को वह आरम्भ करना चाहता था, क्या वह उसी के साथ टूट जायगी ? वह नित्यत्व पाना चाहता था। वह चाहता था कि अपने शरीर की छाया भविष्य-भर मे पड़ी रहे। लेकिन उसके मन की स्थिति को देखने पर यह भय होता था कि वह कम-से-कम अगली पीढी तक भी झाँककर देखेगी या नही।

भगवान ने उसकी वह कमी भी पूरी कर दी। अपने को सभी रूपो मे देखनेवाले उस कलाकार को देखने की इच्छा से मानो वे शिशु-रूप लेकर उसके पास खुद चले आये। उसके उस शिशु मे कैसी दिव्य प्रभा थी ! कलाकार के मन मे उमड़नेवाली करुणा की नाई, वह बच्चा बढता चला जा रहा था। स्वय कलाकार ने सर्वत्र खोजने पर भी अलभ्य तत्त्वो को उस बच्चे की मुसकान मे पाया था। उन जटिल प्रश्नो के उत्तर, जो अब तक खुलते नही थे अब आसानी से खुल गये।

उस नये उत्साह मे, नई मनोगति मे, नये आवेश मे उसने अपने महाकाव्य की रचना शुरू की। अब वह एक बच्चे का रूप बनाने लगा था। उसका मन अपने कीर्ति-कार्य को प्रस्तर के रूप से बनाने के लिए व्याकुल था।

हाथ, मन, हृदय, आत्मा—सभी काम मे लग गये। अरुणोदय की तरह काले प्रस्तर मे प्रभा का उदय होने लगा। निर्जीव अचेतन वस्तु मे सजीवता का जन्म होने लगा। कलाकार अपने प्राण देकर नये प्राणों का सृजन कर रहा है। इसलिए कोई ऐसी चीज नही, जिसमे वह प्राण-प्रतिष्ठा नहीं कर सकता हो।

दोनो बच्चे उसकी प्रसन्नता से होड़ लगाते हुए बढ रहे थे। मूर्ति मे करीब-करीब सभी काम समाप्त हो गये थे। मुख पर हँसी लाने के लिए उसे कितना परिश्रम करना पड़ा। हँसते वक्त उत्पन्न होनेवाले गड्ढे का वह स्पर्श कर रहा था। बच्चा हँसता हुआ खेल रहा था। उसने बच्चे

को गोद में ले लिया। पितृ-सहज अभिमान के साथ उसने दोनो बच्चो को बारी-बारी से देखा। हृदय मे असीम आनन्द का आविर्भाव हुआ। सिर पर कुछ गर्व चढ़ा। 'जातस्य हि ध्रुवो मृत्यु' वाले जगत् मे उसके अपने अविनाश्य होने के प्रयत्न मे उद्भूत दोनो बच्चे एक दूसरे को देख रहे थे। उसके रक्त का स्वरूप, उसके मास-खण्ड का एक अश—वह बच्चा—उसी के हाथ मे संलग्न था। स्वप्न मे, कल्पना मे और आत्मा मे उगा हुआ ज्योतिर्मय बालक स्निग्ध ज्योत्स्ना की तरह खिल रहा था।

अमरनाथ का गर्व सीमा का उल्लंघन कर गया। वह चिल्लाने लगा—मै मानव हूँ, लेकिन अमर हूँ। मेरा नाश नहीं होगा। मै मरने के लिए पैदा नही हुआ। मेरा रक्त इस बालक के कोमल तनु मे दौड़ रहा है। मेरी आत्मा का अणु-अणु इस पत्थर मे सुप्त है। मेरा मास इस शिशु के रूप मे परिणत हो गया है; अब वह नही मरेगा। मेरी आत्मा की तड़फड़ाहट को यह पत्थर सुनाता रहेगा। मुझे और क्या चाहिये? मेरा नाश नहीं होगा। मै अमर हूँ!

अचानक दरवाज़ा खुला। वैवस्वत यम प्रकट हुआ। अमरनाथ का दिल धड़कने लगा। गला भर आया। अप्रतीक्षित समय मे, बेमौके पर यम के आने से अमरनाथ को अपार घृणा और मनोव्यथा हुई।

यम अमरनाथ के कुटुम्ब का जन्म-वैरी था। अमरनाथ के कुटुम्ब मे कोई भी अमरता पाये, यह उसे फूटी आँखो न भाता था। सभी के ग़ायब होकर, मिट्टी होकर, नामोनिशान मिटकर विलीन हो जाने मे उसे परम तृप्ति होती थी। सिर्फ अपना ही कुटुम्ब अविनाशी, शाश्वत रहे, यही उसकी कामना थी। इसलिए जब अमरनाथ अपना काम पूरा कर, अपने नाम को नक्षत्रो से लिखने का प्रयत्न कर रहा था, तभी यम आ धमका।

यम को देखकर अमरनाथ को गुस्सा आया। कलाकार आगन्तुक से लड़ना नहीं चाहता था। उसे मालूम था कि यह असभव है। यम मे अधिक बल था। उसकी समता करनेवाला कोई नही। लड़ने पर भी

फायदा नहीं—वेदनातिरेक मे उद्भूत विरक्ति के साथ कलाकार ने मुसकाते हुए, उसका स्वागत किया।

'आ गये ?'—उसने पूछा। शक्ति-हीनता का सारा शोक उस स्वर मे ध्वनित हो रहा था। आशा के भग्न-खण्ड का स्वर उसमे था।

'हाँ, आ गया। सोचते थे, नहीं आऊँगा ? मूढ ! तुममे इतना धैर्य ! इतना साहस ! तुम्हारा कुल, परम्परा क्या है ? -आर्यवश ? चन्द्रवशे ? नहीं, मिट्टी का एक ढेला ! सूर्य और चन्द्रमा से प्रतिस्पर्द्धा करने का प्रयत्न हो रहा है ! तुम्हे हत-विहतकर, चूर-चूर कर दूँगा !'—उसका था वह गर्जन, हुकार। उसकी हँसी मे मृत्यु का परिहास सुनाई दिया।

'यहाँ कैसे आये ?'—अमरनाथ ने पूछा, मानो वह कुछ भी न जानता हो।

'कैसे ? किस लिए ? तुम्हारे नाम को मिट्टी मे मिलाने। यह देखो, तुम्हारा नामोनिशान मिट जायगा। तुम्हारी कीर्ति भूमि पर अकित होने के पूर्व ही मिट जायगी। तुम्हारे बच्चे की, मूर्ति की क्या दशा होगी, जरा देखो !'

अमरनाथ अपरिमित आतुरता से भर गया ! 'ईर्ष्या-प्रेत ! मेरे बच्चे को चाहो तो मार सकते हो। लेकिन मेरे स्वप्नात्मक उस पत्थर मे तुम्हारी दाल न गलेगी। प्राणो का अपहार भले ही करो। मेरे आवेश, सघर्ष, प्रेम, स्वप्न—इन सबको तुम कैसे छीन सकते हो ? पिशाच ! देखोगे, तुम किस तरह धोखा खाते हो ! तुम क्या जानो, मै कौन हूँ ? छिः, ले जाओ मेरे बच्चे को। उस शिला के पास मत फटको, रे धूर्त !'

'हाय, हाय ! यह क्या कहा आपने ? मेरे बच्चे को आप यमराज के हाथ सौंपना चाहते हैं। अरे हत्यारे, मत छुओ बच्चे को ! चाहो तो उसी पत्थर को ले जाओ'—सुन्दरी चिल्ला उठी।

'सुन्दरि ! देखती नही हो, मेरा भी तो शरीर थर्रा रहा है ? उस अधम से शिकायत मत करो। ले जाने दो उसे बच्चे को। मुझे चिन्ता

नहीं। लेकिन उसकी कामना सिद्ध नहीं होगी। वह मुझे नष्ट करना चाहता है। मैं अविनाश्य हूँ। कोई भी मुझे नष्ट नहीं कर सकता। यही प्रस्तर इस बात का साक्षी है। मेरी आत्मा इसमें प्रफुल्लित हुई है। आत्मा का नाश यम से हो नहीं सकता। शरीर के विनाश-मात्र से क्या हुआ ? वह शिला भी तो मैं ही हूँ।'

यमराज मूर्ति के पास आया। उसे गौर से देखा। 'यह अच्छेद्य, अदाह्य, अक्लेद्य, अशोष्य है, यह नित्य, सर्वगत, स्थाणु अचल और सनातन है'—इस महावाक्य का प्रत्यक्ष प्रमाण थी वह मूर्ति। न जाने बच्चे के सौन्दर्य में उसका मन पिघल गया था या उसका बल ही कम था, यम की शक्ति उस मूर्ति में निष्क्रिय हुई। वह लजा गया। अमरनाथ के बच्चे को लेकर लौट गया।

'हाय, हाय !'—पत्नी चिल्ला-चिल्लाकर रोई।

'मेरे बच्चे, मेरे बच्चे !'—कहकर अमरनाथ ने उस प्रतिमा का आलिंगन किया ; शिला के साथ एकरूप हो गया !

×　×　×

'इतनी देर से क्या देख रहे हो जी ?'—एक आवाज सुनकर मैं चकित हुआ। वह मेरे मित्र नीलकण्ठ अय्यर की आवाज थी। वे भी संयोग से 'म्यूज़ियम' देखने आ गये थे।

'यहाँ आइये ; इस मूर्ति की कहानी पढ़िये'—मैंने कहा।

'कहानी ? क्या कह रहे हैं ? और मूर्तियों के साथ नाम बतानेवाले ताम्र-पत्र लगे हैं इसके साथ तो वह भी नहीं !'—वे बोले।

मैंने देखा—न पत्र था, न कहानी। 'अरे ! कैसी मनोभ्रान्ति थी !'—गुनगुनाते हुए मैंने अपने को सँभाला।

'मेरी बात आप समझ नहीं सके, महाशय ? इस मूरत की मुसकान क्या है ? इस गड्ढे का तत्त्व क्या है ?'

'मुझे क्या मालूम ? आप ही बताइये।'

'यह बच्चा काल को देखकर हँसता है। नश्वर मनुष्य की अमर

बनने की अभिलाषा उसके रक्त में, आत्मा में प्रविष्ट है। लेकिन यह कैसे सभव है ? बच्चा इसका उत्तर दे रहा है। मास के मरने से क्या हुआ। क्या मास ही मनुष्य है ? नहीं, नहीं ; मनुष्य उससे भिन्न ही कोई चीज़ है। ये देवता, देव सब कौन हैं ? इन्द्र नही, वरुण नही, रुद्र, अग्नि, सोम और सुब्रह्मण्य नहीं : ये सभी देवता अमरत्व पाये हुए शिल्पी हैं। ईश्वर के ऊपर भी एक स्थान है। वहाँ कलाकार का वास है। वह बच्चा अपनी तोतली बोली मे, स्थिर मद हास मे कह रहा है—रे मनुष्य, निश्चिन्त रहो , आनन्द से रहो। क्या काल ही को हँसी आती है ? तुम भी मेरे साथ हँसा करो।'—मैंने एक लम्बा व्याख्यान झाड़ा।

'मैं क्या जानूँ, महाशय ? ये कला सम्बन्धी बाते मेरी खोपड़ी मे घुसती ही नही हैं। आप तो पडित ठहरे।'—उन्होंने कहा।

सरस्वती प्रेस के प्रकाशन

उपन्यास

१ कर्मभूमि (प्रेमचन्द) ३॥)
२ कायाकल्प ,, १॥।=)
३ ग़बन ,, ३॥)
४ गोदान ,, ४)
५ घर की राह (इन्द्र वसावड़ा) ।॥)
६ जीवन की मुस्कान (उषादेवी मित्रा) १)
७ निर्मला (प्रेमचन्द) २)
८ प्रतिज्ञा ,, १॥)
६ पिया (उषादेवी मित्रा) १॥)
१० वचन का मोल ,, १)
११ हृदय की ताप (कुटुमप्यारी देवी) २।)
१२ अवतार (थियोफाइल गाटियर) ॥)
१३ अहंकार (अनातोले फ्रास) १)
१४ गरम तलवार (विट्ठलदास उद्देशी) १।)
१५ मा (मैक्सिम गोर्की) १॥।=)
१६ स्नेह-यज्ञ (रमणलाल व० देसाई) १।)
१७ कोकिला ,, २)
१८ कार्ल और अन्ना ॥)
१६ कंगाल की बेटी ॥)
२० कँटीले तार ॥=)
२१ गाड़ीवालों का कटरा (अलैक्जैंडर कुप्रिन) १॥।=)
२२ शेखर ('अज्ञेय') ३)
२३ संजीवनी ('सोपान') २)
२४ शोभा (वसावड़ा) २॥)
२५ प्रायश्चित्त (भाग १-२) ४)
२६ मेरा हक़ १।)
२७ मैदाने जंग ।)

कहानी

२८ अनुभूति (बलदेवप्रसाद मिश्र) १।)
२६ प्रेम-पीयूष (प्रेमचन्द) ।।=)
३० प्रेम-सरोवर ,, ।॥)
३१ हिन्दी की आदर्श कहानियाँ ,, ।॥)
३२ कफ़न (प्रेमचन्द) २)
३३ कौमुदी (शिवरानीदेवी) १॥)
३४ गल्प रत्न (विविध) १)
३५ गल्प-समुच्चय ,, २॥)
३६ तीर्थयात्रा (सुदर्शन) २)
३७ नारीजीवन की कहानियाँ (प्रेमचन्द) १॥)

३८ नारी-हृदय

(शिवरानी देवी) १)

३९ प्रेमतीर्थ (प्रेमचन्द) १)

४० प्रेम-द्वादशी ,, ॥)

४१ पाँच फूल ,, ।॥)

४२ परिवर्तन (सुदर्शन) ॥)

४३ पुष्पलोक ,, ॥)

४४ पिकनिक

(कमलादेवी चौधरी) १॥)

४५ फाँसी (जैनेन्द्रकुमार) ।॥)

४६ मानसरोवर (प्रेमचन्द)

४ भाग, प्रत्येक भाग २॥)

४७ समरयात्रा (प्रेमचन्द) १)

४८ सुप्रभात (सुदर्शन) २)

४९ गल्प-संसार-माला

(भा०—१-८) प्रत्येक ॥=)

नाटक

५० आधीरात

(जनार्दन राय) १॥)

५१ छः एकाकी (विविध) १)

५२. प्रेम की वेदी

(प्रेमचन्द) ।॥)

५३ बड़े म्याँ

(इन्द्र वसावड़ा) ॥)

५४ बरगद

(श्रीकृष्ण श्रीधराणी) ।॥)

५५ सृष्टि का आरम्भ

(बर्नार्ड शॉ) ॥)

काव्य

५६ बिखरे फूल

(रघुवीरसिंह) १)

५७ तूणीर (मंगला मोहन) ।॥)

५८ मुरली माधुरी (सूरदास) ।=)

५९ रूपराशि

(रामकुमार वर्मा) ।॥)

६० हिल्लोल ('सुमन') १)

बालोपयोगी

६१ कुत्ते की कहानी

(प्रेमचन्द) ।॥)

६२ जंगल की कहानियाँ ,, ।=)

६३ दुर्गादास ,, ॥)

६४ रामचर्चा ,, २)

६५ कलम, तलवार और त्याग १)

विविध

६६ कुछ-विचार

(प्रेमचन्द के निबन्ध) २)

६७ कल की बात १)

६८ विश्वामित्र

(उदयशंकरभट्ट का गीतिनाट्य) ॥)

६९ स्त्री दर्शन

(महिलोपयोगी) १)

७० आजाद-कथा भाग १—२

(प्रेमचन्द) ३)

७१ नया हिन्दी साहित्य : एक दृष्टि

(प्रकाशचन्द्र गुप्त) १)

७२ चिन्ता (अज्ञेय) २)

७३ महाप्रस्थान के पथ पर २)